

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182476

UNIVERSAL
LIBRARY



दुरंगी-दुनिया

—:—:—

(एक हृदय विदारक सामाजिक नाटक)

लेखक—

श्रीयुत—

‘दास’ & ‘गुप्त’ ।

प्रकाशक—

उपन्यास-बहार-आफिस, काशी बनारस ।

—:—:—

(प्रकाशक ने सर्व हक स्वाधीन रखा है)

प्रथमवार]

सन १९३१ ई०

[मूल्य ॥॥]

९ नाटक-माला सं० ७० ९

सम्पादक—

शिवरामदास गुप्त,

काशी, बनारस ।



मुद्रक—

महावीर प्रसाद,

नेशनल प्रेस, बनारस कैण्ट ।



पात्र-परिचय ।

♂ पुरुष-पात्र ♂

श्यामाचरण—(एक रईस घराने के निर्धन मनुष्य)

धर्मदास—(श्यामाचरण का कर्त्तव्यशील पुत्र)

मानिकचन्द—(एक नई रौशनी के कामुक रईस)

रामसिंह

गोवर्द्धनदास } (मानिकचन्द के चापलूस मित्र)

गोकुलचन्द

परमानन्द—(एक सदाचारी देश-सेवक मनुष्य)

प्रमोद—(श्यामाचरण का बड़ा पुत्र, विलायत का विद्यार्थी)

विनोद—(श्यामाचरण का छोटा पुत्र, सौंदर्य उपासक)

दौलतचन्द—(एक डरपोक मारवाड़ी)

भक्कड़-फक्कड़—(जोरु-भक्त)

(घाटिया, पण्डे, पुजारी, सुधारक इत्यादि)

♀ स्त्री-पात्र ♀

निर्मला—(श्यामाचरण की सुशील स्त्री)

विमला—(श्यामाचरण की बड़ी लड़की)

सरला—(श्यामाचरण की छोटी लड़की)

कंचनी—(समाज से तिरस्कृत, एक परोपकारी वेश्या)

चंचला—(एक देश उपासिका रमणी)

(पड़ोसिन इत्यादि इत्यादि)

श्रीयुत् आगा हश्र साहब “हश्र”

दी इण्डियन शेक्सपीयर ड्रामेटिस्ट, आर्टिस्ट, सिनरियो
राइटर के मशहूर और असली नाटक ।



भूलभुलैयाँ	II)	यहूदी की लड़की	II)
सिलवरकिंग	II)	उर्दू	II)
उर्दू	II)	खूबसूरत बला	II)
सुरदास	II)	असीरेहिस	II)
खुनेनाहक	II)	विलफरोश	II)
सैदेहवस	II)	शहीदेनाज	II)
भारत रमणी	III)	ख्वाबे हस्ती	II)
आँख का नशा (अप्राप्य)		अबला की आह	II)
नकली	III)	धर्मो बालक (अप्राप्य)	
टर्की हूर (अप्राप्य)		पहला प्यार (,,)	

श्रीयुत् मुंशी अब्बास अली साहब

ड्रामेटिस्ट-दी पारसी कम्पनी बम्बे के मशहूर नाटक ।

ओमती मंजरी	III)	शाही फरमान	II)
उर्दू	II)	उर्दू	I)
पंजाबमेल (छप रहा है)		नई जिन्दगी	III)
उर्दू	III)	सच्ची कुर्बानी	III)
छेड़ी लाजवंती (छप रहा है)		खजानेदेवी	III)
उर्दू	II)	जानिसार	III)

असली नाटकों के मिलने का पता:—

पता—उपन्यास-बहार-आफिस, काशी, बनारस ।

मधुर मुरली—इसका दूसरा नाम “राधामाधव” है। कलकत्ते की मशहूर कम्पनी का यह प्रसिद्ध खेल है। जिस मराठी ‘राधामाधव’ नाटक का भाषानुवाद करके लेखक ने “मधुर मुरली” के नाम से संसार में हलचल मचा दी—कलकत्ते की जनता हजारों बार देखने पर भी जिस “मधुरमुरली” नाटक को देखने के लिये उत्सुक रही, यही वह मशहूर नाटक है। सुन्दर छपाई सचित्र का दाम केवल ॥१॥ आना।

पत्नी-प्रभाव—इसका दूसरा नाम “हिन्दू ललना” है। विषय नाम से प्रसिद्ध है। यह अलफ्रेड कम्पनी का बड़ा ही हृदय-विदारक धार्मिक और दिलचस्प नाटक है। लाखों रुपये की सीन सीनरी के साथ यह खेल भारत की जनता के सामने वर्षों तक आता रहा, ज्यादा प्रशंसा व्यर्थ है—आजही मंगाकर पढ़िये। सुन्दर २ चित्रों के साथ छपा है। मू० केवल ॥१॥ आना।

बाल-रत्न-भोज—‘भारत विजय’ कम्पनी का संसार प्रसिद्ध खेल। राज लिप्सा का उज्ज्वल और रोमाञ्चित नाटक है। इसी नाटक की बदौलत कम्पनी, भारत में विख्यात होकर बड़े २ सार्टिफिकेट प्राप्त कर चुकी है। सुन्दर गाने और द्रामे सहित सचित्र का दाम केवल ॥१॥ आना।

पता—उन्यास-बहार-आफिस, काशी, बनारस।

थियेट्रिकलः नाटकः माला

* रंगीन चित्रों से सुसज्जित अस्ली नाटक *

मेरी आशा	१)	वीर भारत (छप रहा है)	
भक्त सुदामा	१)	श्री छत्रपति शिवा जी	III)
अत्याचार	III)	वीर बंदा वैरागी	II=)
ध्रुवलीला	III)	राधा माधव	III)
सत्य-विजय	III)	कर्मवीर चंड	III)
काशी-विश्वनाथ	III)	हिन्दू ललना	II)
सन्तान-विक्रय	III)	तेगो सितम	II)
हिन्दू की गाय	II)	देशोद्धार	II)
धर्मोजय	III)	भीष्म प्रतिज्ञा	III)
सती सुकन्या	III)	मीरा बाई	II=)
कलियुग की सती	III)	सती अनुसूया	II=)
गरीब किसान	III)	बगुला भगत	II)
आज़ादी या मौत	III)	कृष्णाञ्जन-युद्ध	III)
संसार-चक्र	III)	बालकृष्ण	II)
देश-दशा	III)	परशुराम	III)
धर्मयोगी	III)	मदिरा देवी	II=)
भारतवर्ष	III)	हुब्बे बतन	II)
परीक्षित	१)	महात्मा कबीर	१)
गौतम बुद्ध	१)	तू कौन ?	III)
नल-दमयन्ती	III)	श्रीरामलीला	II)
पत्नी-व्रत	III)	विल्वमंगल	II=)
सावित्री सत्यवान	III)	भारत रमणी	III)
भक्त प्रह्लाद	III)	गंगाबतरण	II)
भक्त विदुर	II)	श्रवणकुमार	II)

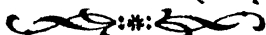
सीता-वनवास	॥१) भाँसी-पतन	॥१)
श्रीमती मंजरी	॥१) कालीनागिन	॥२)
शकुन्तला	॥१) शरीफ़ बदमाश	॥२)
सती सुलोचना	॥१) खाबे हस्ती	॥२)
हिन्दू स्त्री	॥१) खून का खून	॥३)
सौभाग्य सुन्दरी	॥१) मेवाड़ पतन (छप रहा है)	
अजामिल-उद्धार	॥१) सैदे हवस	॥१)
बिक्रम-चरित्र	॥२) यहूदी की लड़की	॥१)
चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त	॥२) खूने नाहक	॥३)
सम्राट अशोक	॥१) खूबसूरत बला	॥१)
बीर बाला	॥१) अबला की आह	॥२)
सती लीला	॥१) दुश्मने ईमान	॥२)
भक्त मोरध्वज	॥१) गोरखधन्दा	॥१)
दुखी भारत	॥१) भूल-भुलझाँ	॥१)
बीर छत्रसाल	॥१) शहीदेनाज	॥३)
आँखों का गुनाह	॥१) पंजाब मेल (यंत्रस्थ)	॥१)
ऊषा-अनिरुद्ध	॥१) शाही फ़रमान	॥१)
सती सारन्धा	॥१) आतशी नाग	॥१)
संगीत थियेटर	१) चलता पुर्जा (उर्दू)	॥२)
रागिनी थियेटर	१) भारत दशा	॥१)
बहारे थियेटर तीनों भाग १	१) एक प्याला	१)
हम्मीर-हठ	१) जवानी की भूल	१)
बाल-रत्न भोज	॥१) दूज का चाँद	१)
महर्षि वाल्मीकि (यंत्रस्थ)	गणेश-जन्म	॥१)
सुभद्रा-हरण	॥१) देहाती महिला	॥२)
पौरस सिकन्दर	॥१) धर्मो-बालक (परिवर्तन)	॥१)

पता—मैनेजर, उपन्यास-बहार-आफिस, काशी बनारस ।

कॉमिक सीरीज

* के *

सर्वोत्तम लोकप्रिय शिच्चाप्रद प्रहसन ।



व्यङ्ग्य बघएडर	॥) ओवर कोट	॥)
कंजूस की खोपड़ी	॥) जोरू का गुलाम	॥)
नई रोशनी	॥) एकशा नम्बर बन्	॥)
डुप्लीकेट	॥) विजिटिंग कार्ड	॥)
स्वामी जटानन्द	॥) नाक में दम	॥)
वेटिंग रूम	॥) फैशन की मार	॥)
डबल जोरू	॥) खाम्दानी डाक्टर	॥)
हरिओ३म् तत्सत्	॥) करेन्सी नोट	॥)
खुशामदी टट्टू	॥) रेशमी साड़ी	॥)
दुमदार सितारा	॥) काठ का उल्लू	॥)
घोटाला पर घोटाला	॥) पौराणिक की शंका	॥)
सटक सीताराम	॥) नीम जंटील मैम	॥)
भंडाफोड़	॥) गण्ड चौथ	॥)
सोड़े की बोतल	॥) गडबड घोटाला	॥)
खोपटानन्द	॥) मर्दमार औरत	॥)
सम्पादक की दुम	॥) बुढ़ापे की हवस	॥)
हकीम हकनाहक	॥) घोंघा बसन्त	॥)
मूर्खानन्द	॥) गोबर गणेश	॥)
पेटू पुजारी	॥) लबडधौं धौं	॥)
धोखे की टट्टी	॥) चांहाल चौकड़ी	॥)

पता—मैनेजर, उपन्यास-बहार-आफिस, काशी बनारस ।

श्रीः

धर्मी-बालक

नाटक

ॐ रंगमंच ॐ

(परमानन्द का ईश-बन्दना करते दिखाई देना)

परमा०—

गाना

बन्दौँ परम पुरुष-परमेश्वर ।
 शिव सनकादिक शेष शारदा ॥
 साधु सन्त जेहि जपत निरन्तर ॥ बन्दौँ०—
 वेद व्यास बरखत यश जाके ।
 गौरी सुत गणपति गाथा के ॥
 'गुप्त' प्रगट निर्गुन गुण मण्डित ।
 विश्व रूप सुविराट प्रभूवर ॥ बन्दौँ०—

(जाना सबका)



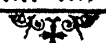
बानू श्यामाचरण का बैंगला ।

(बानू श्यामाचरण अपने कमरे में बैठे हुए कुछ कागजात देख रहे हैं ।
पास ही एक कुर्सी पर बैठी हुई उनकी पत्नी निर्मला पुस्तक पढ़
रही है । श्यामाचरण के हाथ के कागजों पर मस्तिष्क
की आंखों से दस हजार रुपया लिखा हुआ
दिखाई देता है)

श्यामा०—रुपया ! रुपया !! दस हजार रुपया !!! बिना
दस हजार रुपये के न अपना काम चल सकता है और न
मर्यादा बच सकती है । हा, विमला ! पुत्री विमला !! मुझे हर
समय तेरा ही ध्यान है । हिन्दू पिता के हृदय में अपनी तरुण
कन्या को, योग्य वर के हाथ सौंप देने की चिन्ता सदैव बनी
रहती है । पर क्या करूँ, बेटे वालों की माँग और अपनी गरीबी
से लाचार हूँ ।

निर्मला—(किताब रखकर) परन्तु इतना कहने हीसे तो काम
न चलेगा । आखिर कुछ न कुछ उपाय तो करना ही पड़ेगा ।

लो केवाला घर का इसको मान के हित बेच दो ।
शान का सामान सारा मान के हित बेच दो ॥
ऋण से कन्या के उऋण होना ज़रूरी बात है ।
तन के आभूषण भी कन्यादान के हित बेच दो ॥
तरुण कन्या घर में रखकर जल भी पीना पाप है ।
लोक में लज्जा का बँन कर पात्र जीना पाप है ॥



श्यामा०—प्रिये ! यह मैं भी समझता हूँ । संसार और समाज की व्यंग भरी बातों को भली भाँति सुन रहा हूँ ।

निर्मला—तो फिर बिलम्ब क्यों कर रहे हैं ? इन सब चीजों को बेच कर इस धर्म ऋण से उद्धृत हो जाइये ।

श्यामा०—परन्तु यह करने पर भी तो दहेज के रकम की पूर्ति न होगी । मैंने तुम्हारे कहने के पूर्व ही मकान बेचने की कोशिश की थी.....

निर्मला—तो क्या कोई खरीदार नहीं मिलता ?

श्यामा०—नहीं ! खरीदार तो बहुत हैं, पर दाम.....

निर्मला—दाम कम लगता है, यही न ? भला कितना मिलता है ?

श्यामा०—केवल पाँच हजार ?

निर्मला—पाँच हजार ?

श्यामा०—हाँ ! अपनी गरज पर इससे अधिक नहीं मिल सकता ।

निर्मला—और मेरे आभूषण तथा अन्य सामानों का कितना दाम मिलेगा ?

श्यामा०—उतना ही और समझ लो ।

निर्मला—तो फिर लड़के के पिता को उसके कथनानुसार दस हजार ही देकर तै कर लो ।

श्यामा०—तै तो करलूँ । परन्तु, इतने ही से तो सब कार्य न हो जायेगा ।

निर्मला—क्यों ?

श्यामा०—क्योंकि इतनी रकम तो विलक में ही बढ़ानी

होगी। आगे बरातवाले दिन सबके स्वागत और उनके अन्यायी इच्छाओं को कैसे पूर्ण करेंगे ?

निर्मला—फिर ?

श्यामा०—फिर क्या ? संसार के सामने अपनी मानरक्षा के लिए ईश्वर के सन्मुख पाप कार्य करना पड़ेगा सामाजिक धर्म से छुटकारा पाने के लिए राजदंड का अपराधी बनना पड़ेगा ।

धर्म का घोटूँ गला, धर्म बचाने के लिये ।

बेच दूँ आत्मा को द्रव्य कमाने के लिये ॥

बचाये कौन ? है समाज सताने के लिये ।

बनी है भींभरी यह नाव डुबाने के लिये ॥

निर्मला—नाथ ! यह आप क्या कह रहे हैं ? कैसे विचार में उन्मत्त हो रहे हैं ?

श्यामा०—कह रहा हूँ, कन्या के ऋण से दबे हुए हिन्दू पिता के बिचलित हृदय की दुखभरी आर्तबानी । पढ़ रहा हूँ, कुटिल कलिकाल के स्वार्थी और निर्दय समाज की कठोर नियमावली ? क्रूर प्रस्ताव से स्वीकृत हुये इस घृणित नियमानुसार समाज के आज अनेक दरिद्र परिवारों के हृदय में चिता की चिता सुलग रही है, जिसमें संतान का स्वर्गीय-स्नेह मृतक बन कर जल रहा है । आहः—

इन्हीं बातों से जग में अघकी सारी सृष्टि होती है ।

शिशू पर प्रेम के बदले घृणा की वृष्टि होती है ॥

दुखी है देश ही सारा सुखी है एक लाखों में ।

नज़र आती हैं कन्या कालसी कंगाल आंखों में ॥

(विमला अन्दर से दरवाजे का परदा हटा कर आना चाहती है पर अपने पिता की अंतिम बातों को सुनते ही रुक जाती है)

(पुत्र धर्मदास का प्रवेश)

धर्मदास—अवश्य, जिसके पास द्रव्य नहीं है, उसके घर में बेटी का जन्म लेना ही उनके लिए रौरव नर्क की प्रचंड ज्वाला की भांति दुखदाई है ।

श्यामा०—कौन धर्मदास ! सत्य कहते हो बेटा ! सत्य कहते हो । जिस संतति के स्नेह में माता पिता अपने धर्म कर्म और ईश्वर तक को भूल जाता है, उसी संतति का स्नेह उन निर्धन पिताओं का हृदय घुन की भांति चाट डालता हैः—

दुखी हैं जाति हिन्दू ये बेढंगी रीति रसमों से ।
मसल डाला है संतति-स्नेह सुख को नीच रसमों से ॥
समय कटता है कन्या के पिता माता का चिन्ता में ।
नहीं रुकते बहा करते हैं चश्में उनके चश्मों से ॥
जला करता है चिन्ता की चिता में बाप कन्या का ।
जगत में जन्म लेना हो रहा है पाप कन्या का ॥

धर्मदास—ठीक है ! परन्तु अब आपको अधिक चिन्ता न करनी पड़ेगी ।

निर्मला—क्यों ! क्या किसी दयालू महाजन ने मेरी डूबती नाव को सहारा देने के लिए हाथ उठाया है ? या किसी बेटे वाले को मेरी हीन अवस्था पर रहम आया हैः—

जिसे कहते हैं दुनिया, स्वार्थी लोगों की बस्ती है ।
जमाने में जिधर देखो उधर दौलत परस्ती है ॥
कहां है प्रेम दुनिया में ? घृणा ईर्ष्या बरसती है ।
दयालू कौन है जगमें, दया किस घर में बसती है ॥

धर्मदास—पिता जी ! इतना न घबराइये, धर्य धरिए और मैं जैसा कहता हूँ उस रूप में कार्य करिये ।

श्यामा०—अच्छा, कहो ।

धर्मदास—आप राय मानिकचंद को तो जानने हैं ?

श्यामा०—बहुत अच्छी तरह । वह संसार में सबसे अधिक नीच क्रूर और सूम आदमी है—

अधम ये जाति उद्धारक जनों के मग के कांटे हैं ।

गले लाखों गरीबों के दगाबाजी से काटे हैं ॥

लिए दस एक देके, जिससे यह कोठी बनाई है ।

जो उसके पास दौलत है, गरीबों की कमाई है ॥

धर्म०—और उनका पुत्र प्रमोद जी अभी विलायत से बैरि-
स्ट्री पास करके आया है, क्या आप उससे भी परिचित हैं ?

श्यामा०—हां ! उसे भी जानता हूँ ।

धर्मदास—उसका मिजाज कैसा है ?

श्यामा०—यह तो ईश्वर जाने । परन्तु देखने से तो वह
बड़ा ही दयालू सच्चरित्र और धर्मात्मा जान पड़ता है ।

धर्मदास—हां, वह हिरण्यकश्यप के वंश में प्रहाद है ।
राजा साहब दरिद्रों के गले काट काट कर अपनी पदवी बढ़ाने
के लिए डालीं सजाते हैं और प्रमोद जी समाज सुधार, स्त्री
शिक्षा, विधवाश्रम इत्यादि नेक कामों में सुयश कमाते हैं ।

श्यामा०—इसका तात्पर्य ?

धर्मदास—यही कि यदि आप प्रमोद जी से मिलें तो
सब कार्य सहज में ही हो सकता है ।

निर्मला—परन्तु मैं विलायत से लौटे हुए धर्म भ्रष्ट मनुष्य
से अपनी पुत्री का विवाह नहीं कर सकती ।

नहीं हूँ आन की हेटी जो अपनी आन दे दूँगी ।

न दूँगी धर्म च्युत को बालिका, हाँ जान दे दूँगी ॥



धर्मदास—माता ! क्या तुम नहीं जानती हो कि उनका विवाह बिलायत जाने से पूर्व ही हो चुका है ।

निर्मला—फिर ?

धर्मदास०—मेरा प्रस्ताव तो राजा साहब के कनिष्ठ पुत्र विनोद की ओर है ।

श्यामा०—परन्तु जब तक वह बूढ़ा जीता है, उसमें प्रमोद जी क्या कर सकते हैं ।

धर्मदास—चाहे वे कुछ न कर सकें, परन्तु अपने कंजूस पिता से सब कुछ करा सकते हैं । यदि आप आज्ञा दें तो मैं उनसे कहूँ वे मेरे मित्र हैं, आशा है कि मेरी बात न टालेंगे ।

श्यामा०—अच्छी बात है ! यदि तुम्हारी इच्छा है तो कहो । मुझे तो विश्वास नहीं है । परन्तु चेष्टा करो, देखो भाग्य क्या दिखाता है । शोक ! जब समाज ही मान घातक हो तो फिर मान की रक्षा कैसे होः—

मान गौरव शान जो कुछ था उसी दिन खो गया ।

जब हुई कन्या, पिता का शीश नीचा हो गया ॥

(धर्मदास जाता है विमला आती है, श्यामाचरण अपना छाँसू पोछते हैं)

विमला—पिताजी ! भोजन तैयार है ले आऊँ ?

श्यामा०—नहीं ! जाओ तुम लोग भोजन करो, मैं न खाऊँगा ?

विमला—क्यों पिताजी ?

श्यामा०—इच्छा नहीं है ?

निर्मला—आखिर क्या खाया जो भूख नहीं है ?

श्यामा०—क्या खाया ? वही जो दीन हीन लोगों का एक मात्र आधार हैः—



कहो क्या कम है सदमें जो कि कुछ खाने की इच्छा हो ।
सुधा है अभ्रजल जो दिल को हरियाने की इच्छा हो ॥
किसे हो भूख प्यास घर में जहां कन्या कुँआरी हो ।
वह क्या खाये कि जिसकी आबरू जाने की बारी हो ॥

विमला—हे भगवन् ! यह मैं क्या सुन रही हूँ । आज
मेरे ही कारण इस घर में दुख का सागर लहरा रहा है । मुझ
अभागिनी के हेतु चिंता का बादल छा रहा है:—

मेरे कारण ही इस घर में यह छाया दुःख सारा है ।
मेरी चिंता ने ही माता पिता के मनको मारा है ॥
बना नज़रों में वह कौंटा कि जो आँखों का तारा है ।
जहाँ थी स्नेह की सरिता वहीं करुणा की धारा है ॥
अगर कन्या न मैं होती, नहीं आनन्द कम होता ।
न घर भर यों दुःखी होता न मैं होती न गम होता ॥
(डेबुल से पिस्तौल निकाल कर)

जो मेरे साथ आये हैं वह मेरे हाथ निकलेंगे ।
मेरी काया से रू: गम घर से साथ ही साथ निकलेंगे ॥
(फौर करती है पिस्तौल खाली होने से गोली नहीं चलती श्यामाचरण
भपट कर विमला का हाथ पकड़ लेते हैं ।)

श्यामा०—हैं यह क्या ?

निर्मला—हा ! मेरी बेटी !!

(निर्मला का बेहोश होकर गिरना—श्यामाचरण का एक हाथ से
उसे संभालना, दूसरे हाथ से पिस्तौल पकड़ना)

टेब्ला



मार्ग ।

(भक्कड़ फक्कड़ का हाथ में तुलसी की माला लिये हुये दोनों ओर से अपने भाग्य पर झंखते हुये आना)

भक्कड़—विवाह करो, अवश्य करो । जाति की न मिले परजात से करो—कुँआरी न मिले, बिधवा से करो । युवती न मिले तो बूढ़ी से लगन बनाओ—गोरी न मिले तो काली से विवाह रचाओ । स्त्री आयेगी, सन्तान उत्पन्न होगी, बाप दादों का नाम चलेगा, मरने के बाद पिण्डदान मिलेगा । कुल को तारेगा—बुढ़ौती का सहारा होगा । शहर में गृहस्थ कहलाओगे—पशु से मनुष्य बन जाओगे । चार लोगों में तुम्हारी इज्जत होगी—जिन्दगी चैन से कटेगी । बस, अब यहीं बैठ कर स्त्री के नाम की माला घुमाऊँगा—बिना विवाह किये घर न जाऊँगा ।

(बैठ कर आँख मूँद कर तुलसी की माला फेरता है)

फक्कड़—(आकर) भूखों मरो कोई पूछने वाला नहीं ; निर्जला रहो कोई जल देने वाला नहीं । दुःख बीमारी में कोई सम्भालने वाला नहीं ; टांगे थक जायें तो कोई दबाने वाला नहीं । हाय ! हाय ! संसार का यह हरा भरा वृक्ष युवा अवस्था में पतझड़ हो रहा है—कोई जल नहीं देता । बेदुम का घोड़ा चारों ओर भटक रहा है कोई बाँध नहीं लेता । पिता ने जवानी

के मैदान में आते ही हमसे मुल्ल मोड़ लिया। माता ने घर का निठल्लू समझ कर स्वर्ग का रास्ता लिया। सोचा था, अपने होने वाले श्वसुर के टमटम में लग जाऊंगा तो शाम सुबह हवाखोरी को जाऊंगा। पर—

कहता के मन और है करता के मन और।

उधो कहे माधो से भूठी मन की दौर॥

परमात्मा ! अकेला पैदा करना पर अकेला जीवित मत रखना। धर्मशाले में जाओ तो बिना स्त्री के कोई टिकने नहीं देता। पटरी पर सोओ तो पुलिस चोर समझ कर डण्डे से है खबर लेता। मुसाफिरखाने में सोओ तो सब गिरह कट कहते हैं—किराये का मकान लो तो मकान मालिक सबसे पहले जोरू को पूछते हैं। सारांश कि दिन रात चकवा की भाँति निहारा करता हूँ—पपीहे की भाँति हाय जोरू, हाय जोरू पुकारा करता हूँ। (सामने देख कर) हैं, यह कौन बैठा हुआ ऊँच रहा है ? आँखें मूँद कर जमीन सूँघ रहा है—अच्छा जी अपने से क्या, कोई मरदूद होगा। अब तो यहीं बैठ कर स्त्री के ध्यान में समाधि लगाऊँगा—या तो जान ही दे दूँगा—या स्त्री लेकर ही घर जाऊँगा।

(आँखें मूँद कर माला घुमाता है)

भकड़—(आँखें खोल कर) हैं, यह चोर का भाई गिरह-कट कौन ? यह मुझसे भी सवा हाथ आगे बढ़ रहा है। स्त्री के लिये एक दम निराजल व्रत कर रहा है।

हाय हाय री मेरी घरवाली।

तुम बिन दुनिया हो गई खाली॥

(उल्ल कर एक कदम आगे खिसक जाता है, आँखें मूँद लेता है)



फकड़—(आँखें खोल कर) हैं, मैं तो सेर था, यह सवा सेर हो गया ? साँप से मेढक बाज़ी ले गया । सच है कि स्त्री-भक्त ! संसार से विरक्त !!!

हाय हाय री मेरी घर वाली ।

मिले जो तू तो है दीवाली ॥

(एक कदम आगे उछल कर आँखें मूँद लेता है)

भकड़—(आँखें खोलकर) अरे वाह ! कोयल से काग बढ गया ? गुरु गुड़ रहा, चेला चीनी होगया ? सच है बिन घरनी घर भूत का डेरा ।

हाय री मेरी स्वसुर की बेटी ।

सूखी तुम बिन मेरी खेती ॥

(एक कदम आगे उछल कर आँखें बंद कर लेता है)

फकड़—(आँखें खोलकर) वाह ! वाह !! मूसा बिल्ली का कान काटे । बकुला और बाज़ को डांटे ? ठीक कहा है ।

नारी है जीवन की प्यारी नारी जग की खान ।

बिन नारी के सोने के घर जैसे अनल समान ॥

(एक कदम आगे उछल कर आँखें बंद करके)

भकड़—(आँखें खोलकर) हैं पैसिजर ट्रेन और डाकगाड़ी से आगे बढ जाये ? घोड़े से गदहा बाज़ी ले जाये ? क्या एक विदेशी पर अपना भेद प्रकट कर दूँ ? नहीं, नहीं । कहेगा पुरुष होकर स्त्री के लिये रोता है । बाहर मूँछ पर ताव देता और यहाँ जोरू का पाँव धोता है । अब तो ऐसी खुशीली कविता करूँ कि यह मेरे सामने नाक रगड़े । खुद आकर मेरा चरण पकड़े । हे जगत पिता के पिता ! अब शीघ्र इस पोष्य पुत्र की

सुध लो । अपने लम्बे २ हाथों से एक सुन्दर स्त्री मेरी ओर ढकेल दो । (एक कदम आगे उछल कर-आँखें बंद करके)

सागर का जल सर सरिता से सागर ही में जाता ।

मेरा तो है नारि जाति से जगमें अविरल नाता ॥

भक्कड़—हैं ! यह तो पुरुषत्व के मैदान में दिलावर बनकर बाज़ी ले गया । मुझे स्त्री का खटमल समझा और अपने मच्छर बनकर उड़ गया । अब इसका ऐसा उत्तर दूँ, कि यह भी लज्जित हो जाये और मेरे आगे शीश झुकाये । हे पतित पावन ! लक्ष्मीपति !! मुझे प्रेम-पथ में पांव बढ़ाने का बल दो । और एक रूपवती कन्या अपने बड़े २ पैरों से मेरी ओर ठेल दो ।

जल वायु आकाश के मालिक अपनी शान दिखादो ।

जग है सूना मेरे खालिक एक जोरु टपका दो ॥

(एक कदम उछल कर आँखें बन्द करके)

भक्कड़—(आँखें खोलकर) हैं ! छुन्दर के सर में चमेली का तेल ! अच्छा बच्चा, अब वह नया पद सुनाऊँ, कि तू भी खा जाय गच्चा ।

एक अचम्भा देखो चल, सूखी लकड़ी लागे फल ।

जो कोई उस फल को खावे, पेड़ छोड़ कहीं और न जावे ॥

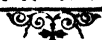
(एक कदम आगे उछल कर आँखें बन्द करके)

फक्कड़—(आँखें खोलकर) ओह ! उल्टा चोर कोतवाल को डांटे । अच्छा बच्चा वो पद्य सुनाऊँ कि तेरे बाप का भी शीश झुकाऊँ ।

देखी एक अनाखी नारी, गुन उसमें एक सबसे भारी ।

पढ़ी नहीं अरु अचरज आवे, मरना जीना तुरत बतावे ॥

(एक कदम उछल कर, दोनों का आँखें खोल देना)



भकड़—हैं ! यह क्या ?

फकड़—हैं ! यह क्या ?

भकड़—आँख के अन्धे नाम नैनसुख ?

फकड़—उल्लू की दुम फाखता !

भकड़—खोरही कुतिया मखमल का भूल ?

फकड़—बाप ने मारी पेड़की बेटा तोरन्दाज !

भकड़—भड़भूजे की लड़की केशर का तिलक !

फकड़—मन उमराव कर्म दरिद्री !

भकड़—छोटे मुँह बड़ी बात !

फकड़—(खड़े होकर) मेंडकी को जुकाम !

भकड़— ,, चुप रह बदलगाम ।

फकड़—क्यों हारा तो गाली पर उतर आया ?

भकड़—जा जा भीख माँग और पेट पाल !

फकड़—रहने दे, रहने दे, व्यर्थ न बजा गाल !

भकड़—गला घोंट दूंगा ।

फकड़—नाक तोड़ दूंगा ।

भकड़—सर फोड़ दूंगा ।

फकड़—गर्दन मरोड़ दूंगा ।

(दोनों का हाथा पाई करना—एक सुधारक का आकर समझाना)

सुधारक—अरे जाने दो, जाने दो, यह क्या करते हो ?

भकड़—नहीं, आप बीच से हट जाइये ।

फकड़—नहीं नहीं, आप दो सिंहीं के बीच में न आइये ।

सुधारक—पर बात क्या है पहले यह तो बताओ ?

भकड़—नहीं, मुझे लड़ने दो ।

फकड़—नहीं, मुझे मरने दो ।



सुधारक—अरे पर इस लड़ाई का कारण क्या है ?

भकड़—यह है इसकी शठता !

फकड़—यह है इसकी दुष्टता !

सुधारक—अरे भक्तियों ! ऐसे आंदोलन के समय जब कि देश स्वराज्य के लिये बलिदान हो रहा—बाल वृद्ध देश सेवा कर रहा है, तुम दो युवकों का आपस में लड़ना कितनी मूर्खता है।

भकड़—खैर, यदि आप देश के नाते हमें समझाते हैं तो हम मान जाते हैं।

फकड़—अगर आप देश के भाई होकर हमें मनाते हैं तो हम शांत हो जाते हैं।

सुधारक—जरूर मान जाओ—देश के लिये अपने हृदय की आग को अपनी आसुओं से बुझाओ। दो देशी मुर्गों का आपस में चोंच उठाकर लड़ना अच्छा नहीं। यदि कहीं सुफेद बिल्ला देख पायेगा तो बारी बारी दोनों को हड़प कर जायेगा।

भ०—ठीक, बहुत ठीक। बेदुम के बन्दर के आगे यह छत्रुन्दर चें चें करके रह जायगा।

फ०—सच है, उस सुफेद बन बिलाव के आगे तो यह काका कौवा टें टें करके रह जायगा।

सुधा०—अच्छा, तो अपनी २ राम-कहानी सुनाओ। यह चौबे दूबे के उठाव पटक का मूल कारण तो बताओ।

भ०—भाई जी ! बात यह है।

फ०—मित्र जी ! कथा यह है ?

सुधा०—चुप रहो ! दोनों एक साथ न बिल्लाओ।

भ०—अच्छा तो पहले मैं कहूंगा।



फ०—नहीं, पहले मैं कहूंगा ।

सुधा०—फिर वही बेसुरी तान । वही अटपटांग ।

भकड़—देखिये, इस बेदुम के लंगूर ने मेरी उपासना में बाधा डाली ।

फकड़—देखिये, इस दुम कटे ने मेरी समाधि नष्ट कर डाली ।

सुधा०—समाधि और उपासना ?

दोनों—जी, जी.....अपनी सत्य है याचना !

सुधा०—आखिर तुम लोग किस देवता के उपासक हो ?

भकड़—जिससे सृष्टि की वृद्धि होती है ।

फकड़—जो मनुष्य के तीनों अवस्था का दुख खोती है ।

सुधा०—अर्थात् ?

दोनों—छी !

सुधा०—हत् तेरा मुँह काला हो । कल्लू और किक्कर का जंग और कारण एक छी का तरंग ! इतना बड़ा सर और भेजा जैसे खर !

भकड़—वाह महाशय जी वाह ! आपने तो मेरे जीवन के समस्त उमंगों पर पानी फेर दिया ?

फकड़—वाह पंचराज जी ! आपने तो मुझे आकाश से जमीन पर पटक दिया ।

सुधा०—छी: ! छी: !! मुख पर मर्द की मूँछ रखते हो और आपस में छी के लिये लड़ते हो ?

भकड़—विप्र जी ! देखिये स्त्री की निन्दा कर मेरे दिल को चोट न पहुँचाइये ।

फकड़—परिडत जी ! मेरे हरे भरे हृदय के मैदान में तिर-स्कार का घोड़ा न दौड़ाइये ।

भकड़—देवराज ! मनुष्य पैदा होता है स्त्री से, परवरिश पाता है स्त्री से । धन पैदा करता है, स्त्री के लिये । दुनिया की सामग्री जुटाता है, स्त्री के लिये ।

फकड़—दुःख में शांति दें स्त्री ! शोक में हर्षित करें स्त्री !
रोतों को हँसायें स्त्री ! देव दानव को हरायें स्त्री !!—

अजब शक्ति है औरतों के बाल और चाल में ।

देवता भी भूल जाता है इनके ख्याल में ॥

सुधा०—वाह ! स्त्री क्या है मानो कामधेनु !

भकड़—उससे भी बढ़ कर :—

जोरु से है जग उजियाला जोरु जीवन सार ।

मरते जोरु, जीते जोरु, जोरु से संसार ॥

सुधा०—मूर्ख बटेरो !—

नागी कौतुक देखकर, दिया कवीरा रोय ।

इस घूँघट की मार से, जीता बचा न कोय ॥

भकड़—हाय ! हाय !! जोरु का यह अनादर !

फकड़—हाय ! हाय ! ऐसा दुरआशीर्वाद !

सुधा०—देखो, याद रखो:—

रंग रूप में गोरी हो तो जानो विष का प्याला ।

गोरे चाम पै भूल न जाना इनका हृदय है काला ॥

भकड़—अच्छा गोरी न हो काली ही सही ।

फकड़—काली न हो बिना आँख वाली ही सही ।

सुधा०—सारांश कि तुम मुर्गों को मुर्गी जरूर चाहिये ।



दोनों—जरूर ! जरूर !! वह सोने का अंडा देगी—मेरे अंधेर घर को प्रकाशित करेगी ।

सुधारक—पर एक बात माननी होगी ।

भक्कड़—सर आँखों से ।

सुधा०—सौगन्ध खाओ !

भक्कड़—आपके सर की !

सुधा०—हैं ! अवे, मेरे सर की क्यों ?

भक्कड़—जैसे आपका सर, वैसे मेरा !

सुधा०—नहीं नहीं, यह चालाकी रहने दे ।

भक्कड़—अच्छा, अपने और आप दोनों के सर की ।

सुधा०—प्रतिज्ञा करते हो ?

भक्कड़—भीष्म की तरह ।

सुधा०—अच्छा तो मेरे मुहल्ले में एक स्त्री विवाह करने को तैयार है, परन्तु उसे स्वयम्बर से जीत कर लाना होगा ।

भक्कड़—मैं राम बन कर धनुष भंग करूँगा ।

फक्कड़—मैं अर्जुन बन कर मत्स्य वेधन करूँगा ।

भक्कड़—मैं रावण बन कर सीता हर लाऊँगा ।

फक्कड़—मैं दुःशासन बन कर उसे बीच सभा में अपनाऊँगा ।

सुधा०—अरे बन मानुषों ! हार्थी का बाँधना और स्त्री का रखना बराबर है । व्यर्थ चंचल मन के घोड़े न दौड़ाओ, यदि विवाह करना है तो कल कमर कस कर मैदान में आओ ।

भक्कड़—सुधारक जी ! हम लोग हर तरह से तैयार हैं ।

फक्कड़—यदि विवाह के चौसर पर अकेले बाज़ी हार जायेंगे तो दोनों मिल कर आधी आधी बाँट लायेंगे ।

सुधा०—देखो, यदि उस बाज़ी में हार गये तो सर गंज़ा हो जायगा ।

दोनों—देखा जायगा ।

सुधा०—अच्छा तो अपना काला मुँह लेकर घर जाओ ।

दोनों—या स्वर्गीय पिता ! मेरी मदद को आओ । प्रणाम !

सुधा०—आयुष्मान् !

(दोनों का एक ओर—सुधारक का दूसरी ओर जाना)



आनन्द बाग

(चौधरीरामसिंह, गोकुलचंद, और सेठ गोबर्धनदास इत्यादि मित्रों के साथ राय मानिकचंद का प्रवेश)

मानिक०—कहिए चौधरी साहब ! आज की सजावट कैसी हुई है ?

गो० चौ०—वाह वाह ! क्या कहना है । आज तो यह बाग इन्द्र के उद्यान को भी लज्जित कर रहा है—

कटी है दूब की क्यारी कि गलीचे बिछाये हैं ।

धरे हैं खुशनुमे गमले कि गुलदस्ते सजाये हैं ॥

अहा ! क्या कुंज कुसुमों के ये मन्दिर से बनाये हैं ।

लगाए हैं इलेक्टिक बल्ब या तारे सजाये हैं ॥



हर एक आनन्द के सामान दर दर पर दरसते हैं ।

फूवारे छूटते हैं या जल के मोती बरसते हैं ॥

रामसिंह—क्यों नहीं ! आखिर राजा साहेब का बाग़ है
या कोई मज़ाक है ?

गईसों की है शोभा न कि कंगालों की शोभा है ।

यही पैसे का सुख और धन वालों की शोभा है ॥

(खदर धारी गले में एक भोली लट्काए परमानन्द का प्रवेश)

परमानन्द—भूठ ! यह धन की शोभा नहीं वरन् धन की
दुर्दशा है ।

(जीव से सृष्टि की शोभा जीव की शुभ कर्म से ।

धन से शोभा धर्म की है धन की शोभा धर्म से ॥

रामसिंह—कौन परमानन्द जी ! आइए आइए कहिए
आज इधर कैसे भूल पड़े ?

परमानन्द—भिक्षा के लिए ।

रामसिंह—भिक्षा के लिए ?

परमानन्द—हाँ ! भिक्षा के लिएः—

(भोली फैलाकर) सेरे परदे में लाखों माँगने लाचार आये हैं ।

दया की भीख लेने हम तुम्हारे द्वार आये हैं ॥

रामसिंह—बस बस अधिक न बनिए । इस मज़ाक का
किसी और समय के लिए उठा रखिए ।

परमानन्द—रायसाहेब ! यह मज़ाक नहीं है, इसे हँसी में
न उड़ाइये । मनुष्य मज़ाक के लिए गैरों के आगे हाथ नहीं
फैलाता । बल्कि जब सब ओर से लाचार हो जाता है तब
भीख की भोली उठाता हैः—



मँगाना भीख ही स्वीकार था मुझसे ज़माने को ।
 किया पैसे ने है हमको विवश भोली उठाने को ॥
 तरसती हैं हमारी माँ बहिन एक एक दाने को ।
 लुधा से मर रही हैं पर नहीं मिलता है खाने को ॥
 बहुत कुछ मित्र तुमसे दिल में रख कर आश आया हूँ ।
 कि भूखे भाइयों के हिल तुम्हारे पास आया हूँ ॥

रामसिंह—परमानन्द जी ! आज तुम्हें क्या हो गया जो
 ऐसी बातें कर रहे हो ?—

ओ हँसता था सदा क्यों आज उसकी दीन बोली है ।
 जो खुद है लखपती वो क्यों लिये भिक्षा की भोली है ॥

परमानन्द—

समय ने द्वार बलि के विष्णु से भिक्षा मँगाया था ।
 समय ने हरिचन्द को डोम का सेवक बनाया था ॥
 समय ने राम से राजा को नंगे पग फिराया था ।
 समय ने पार्थ से बलवीर को हिजड़ा बनाया था ॥
 नहीं है खार भी अब लाख की, कोरा भिखारी हूँ ।
 कि टूटे हिन्द के मन्दिर का मैं अदना पुजारी हूँ ॥

मानिक०—क्या वास्तव में अब आप के पास कुछ भी
 नहीं है ?

परमानन्द—नहीं भाई, अब इन कपड़ों के सिवा और
 कुछ नहीं है ।

गोकुल०—आपकी वह सम्पत्ति क्या हुई ?

परमा०—वह जिसकी थातो थी, मैंने उसी को सौंप दी ।

जोब०—तो क्या वह आपकी सम्पत्ति नहीं थी ?

परमा०—नहीं ।



मानिक०—किसकी कमाई थी ?

परमा०—गरीब देश भाइयों की—

उन्हीं से एक के दश लेके वो दौलत जुटाई थी ।

उन्हीं के खून से मैंने भी वो कोठी बनाई थी ॥

उन्हीं का अन्न खाते और उन्हें भूखे सुलाते थे ।

उन्हीं को दे दिया सब कुछ कि जो उनकी कमाई थी ॥

न हम कुछ साथ लाये थे न लेकर साथ जायेंगे ।

कि खाली हाथ आये और खाली हाथ जायेंगे ॥

मानिक०—तो फिर भीख क्यों माँग रहे हा ?

परमा०—उन्हीं के लिये । क्योंकि देश के असंख्य दीन-हीन परिवारों के अश्रुजल, जा अमीरों के अत्याचारों से उनकी आँखों से गिरते थे—आज ईश्वर के कोप से देश में नदियाँ बन कर बह गईं और उसमें अनेक धनवानों की सम्पदा और दरिद्रों की भाँपड़ियाँ एक साथ विलीन हो गईं :—

जो कल थे लखपती वे आज हैं मुहताज़ दानों के ।

नहीं है भोपड़ी भी आज बदले में मकानों के ॥

बिछाने को न मिलती घास, पेड़ों की न छाया है ।

पड़े हैं जान के लाले महा दुखिया किसानों के ॥

कहीं रानी हैं माँ वहिनें, कहीं बच्चे विलखते हैं ।

न खाना है न कपड़ा है वो सर्दी में सिसकते हैं ॥

मनुष्यों के लिये भोजन बसन पशुओं को चारा दे ।

हमें कुछ देके भित्ता दीन दुखियों को सहारा दो ।

मानिक०—परमानन्द जी ! आप धर्मात्मा हैं, जो आपने अपनी सारी सम्पत्ति, जिसे पूर्वजों ने अनेक मुसीबतों को उठा कर कमाया था, धर्म में लगा दिया । पर मैं ऐसी मूर्खता



नहीं कर सकता। जिस धर्म का परिणाम भीख माँगना हो, मैं ऐसा धर्म नहीं चाहता। हाँ, यदि आपको भोजन इत्यादि की इच्छा हो, तो मेरे यहाँ बहुत से कार्य हैं, आप अपना खर्च चला सकते हैं। मैत्री के नाते मैं आपकी और नौकरों से ज्यादा तनख्वाह देने के लिये तैयार हूँ।

परमा०—रहने दें, राय साहब ! अपनी इस सहायता को पेट के कुत्तों के लिये अपने पास ही रहने दें।

जो देना हो दया कर उन गरीबों के लिये दे दो।
बसन भोजन वो धन उन बदनसीबों के लिये दे दो ॥
सहारा दो उन्हें जो बाढ़ पीड़ित वे सहारे हैं।
दया कर दो कि वे लाचार भी भाई तुम्हारे हैं ॥
जुटा मत पाप की पूँजी भले शुभ कर्म के बदले।
धर्म कर लो कि तुमको भी मिलेंगे धर्म के बदले ॥

मानिक०—मुझे ऐसा धर्मात्मा नहीं बनना है:—

जो मर कर पायेंगे इस आस पर सम्पत्ति लुटाते हैं।
महामतिमन्द हैं जो यूँ क़्याली खीर खाते हैं ॥
जो माँगते हैं सभी बैकुंठ की लालच दिखाते हैं।
जो आते हैं वह चन्दों का रजिस्टर साथ लाते हैं ॥
जिन्हें देखो खुद को देश का सेवक बताते हैं।
धर्म की आड़ में यों भीख से दौलत कमाते हैं ॥

गोब०—थे पहले दीन भिखमंगे, मगर अब सब भिखारी हैं।

जो चन्दों के भिखारी हैं वे चलते राजगारी हैं ॥

गोकु०—भले मानस भी अब तो धर्म परदों में छलते हैं।

हज़ारों धूर्तों के खर्चे इन्हीं चन्दों से चलते हैं ॥

मानि०—सभी बनते हैं सच्चे पर करें विश्वास किस किसका ।

जमाना ही तो दुखिया है करें उद्धार किस किसका ॥

परमा०—इस कथन का अभिप्राय ?

मानिक०—यही, कि मुझे ऐसे चन्दे मांगने वालों का विश्वास नहीं ।

परमा०—तो फिर आप अपने आदमियों द्वारा उन दीन दुखियों की सहायता कराइये ।

मानिक०—इतना अवकाश नहीं ।

परमा०—क्या साफ जवाब ?

मानिक०—ऐसाही समझिये ।

परमा०—क्या मैं खाली हाथ लौट जाऊँ ?

मानिक०—मजबूरी है ।

प्रमोद—(आकर) कभी नहीं, इनकी सहायता करना जरूरी है ।

मानिक०—कौन ? प्रमोद !

प्रमोद—हाँ, पिता जी ! आप का स्नेह-भाजन प्रमोद !

सुका है आप के चरणों में उसकी लाज रख लीजें ।

नहीं, ज्यादा तो थोड़ा ही गरीबों के लिये दीजें ॥

हैं लाखों बेसरो सामान हरिये दुःख आग्न के ।

सहारा दीजिये वे दीन भी हैं लाल भारत के ॥

मानिक०—प्रमोद ! प्रमोद !! तू क्या कह रहा है ? तुझ पर भिखमंगों का चक्र चल गया, जो इनका वकील बन रहा है ।

प्रमोद—पिता जी ! मैं तो क्या बल्कि इस चक्र में भारत वर्ष का मुकद्दर चक्र खा रहा है ?



एक दो हैं कूक नौकर सैकड़ों बेहाल हैं ।
 एक दो हैं लखपती तो सैकड़ों कंगाल हैं ॥
 एक तो वर्षा अकाल और बाढ़ से हैरान हैं ।
 तिस पै श्रीमानों की ठोकर बूट से पामाल हैं ॥
 ऐश में हम, हाय ! उनका जोना भारी हो गया ।
 उनकी ही आहों से यह भारत भिखारी हो गया ॥

मानिक०—तो मैं क्या करूँ ? क्या तुम यह चाहते हो कि मैं भी अपनी दौलत लुटा कर दरिद्र बन जाऊँ ? भिखारी बन कर गली गली ठोकर खाऊँ ?

परमा०—नहीं भाई नहीं ! पदवी घर बनने के लिए, मान-पत्र अपनाने के लिए रुपये उड़ा दीजिए, पर गरीब देश भाइयों के लिये धर्म के नाम पर एक पैसा भी न खर्च कीजिये:—

खुशी से खर्च दिये लाखों ही टाइटिल के लिये ।
 खुले हैं तोड़े यहाँ दावतों महफिल के लिये ॥
 शान के वास्ते पगवाह नहीं है लाखों की ।
 किन्तु मरहम भी नहीं दूटे हुये दिल के लिये ॥
 जो दशा रक्खी अमीरों ने यही भारत की ।
 देखना होवेगी मग्घट सी मही भारत की ॥

मानिक०—ओह ! हमारे घर में आकर हमाराही अपमान करते हो ? बगला भगत बन कर जगत को लूटते और फिर भी देशभक्त बनते हो ? बस, अब अधिक ज़बान न हिलाओ, अगर भला चाहते हो, तो चुपके से इस मकान से बाहर निकल जाओ !:—

तुम्हें भी सीख दी जायगी इस जाँ सीख के बदले ।
 मिलेंगे लात जूते और धक्के भीख के बदले ॥



प्रमोद—(परमानन्द जाना चाहता है उन्हें रोककर) ठहरिये !
परमानन्द जी ठहरिए ! पिता जी ! जब तक प्रमोद इस घर
में जीवित है, तब तक किसी भी देशसेवक का अपमान नहीं
हो सकता हैः— (छूरी निकाल कर)

इन्हें देने को धन मैं आप से कर्ज जोड़ कर लूँगा ।

न देंगे आप इस पर भी तो अपनी जान दे दूँगा ॥

मानिक०—(हाथ धरकर) अरे बाबल ! यह हठ ठीक नहीं ।
मेरा धन तो तेरे ही काम आयेगा, तूही इससे लाभ उठायेगा ।

लुटा कर इस तरह धन अन्त तू ही कष्ट पायेगा ।

वचा रखेगा तो आखिर तेरे ही काम आयेगा ॥

प्रमोद०—भला ये कब हुई किसकी जो मेरे काम आयेगी ।

गई कारूँ के संग कय जो ये मेरे साथ जायेगी ॥

गई दौलत न संग, यों ही गये जो शान आली थे ।

सिकन्दर जब गया दुनिया से दोनों हाथ खाली थे ॥

मेरे वदने में करिए फिर मुसलिस वदनसीयों की ।

मुझे दुनिया में रखना हो तो सुध लीजें गरीबों की ॥

मानिक०—बेडा.....

प्रमोद०—जब तक आप इनको सहायता न कर लेंगे मैं
कुछ भी न सुनूँगा ? यदि आपका दौलत की चाह बेटे की
मुहब्बत से ज्यादा न हो, तो चेकबुक निकालिये और दस्तखत
करके इन्हें दे दीजिये ।

मानिक०—सुन तो सही ?

प्रमोद०—कुछ नहीं ।

मानिक०—(चेकबुक निकाल कर) अच्छा कितना लिख दूँ ।

प्रमोद०—आप दस्तखत करदे मैं लिख दूँगा ।



मानिक०—आखिर ?

प्रमोद०—आप दस्खत तो करें ।

मानिक०—(इस्ताक्षर करके देते हैं) ले भाई, जिसमें तेरी जिद्द रह जाय वही सही ।

प्रमोद०—(एक हजार लिखकर देता है) लीजिए श्रीमान् ! यह सेवक का तुच्छ दान है ।

मानिक०—पर कितना लिखा यह तो बतला (हाथ से चेक लेकर देखना चाहता है प्रमोद परमानन्द को देता है)

प्रमोद०—एक हजार ?

मानिक०—(घबड़ा कर) एक हजार या कर्त्तार !

(सर पकड़ कर गिरना चाहता है सब मित्र पकड़ लेते हैं—प्रमोद हाथ जोड़कर प्रणाम करता है—परमानन्द आशीर्वाद देते हैं)

टेबला





साधारण कमरा

(कामना का पूजन की सामग्री लिए गाते हुए आना)

कामना—

गाना

दया निधि तुम हो मगर मुझ पै नज़र है कि नहीं ।
दासी तेरी हूँ प्रभू मेरी खबर है कि नहीं ॥
गणिका गज गिद्ध अजामिल को भी तारा तू ने ।
दिया निज धाम वहाँ मेरा गुज़र है कि नहीं ॥
पतित पावन है तेरा नाम जगत गाता है ।
वेग दासी को लगा पार नाथ ! बिनती यही ॥

(कामना जाना चाहती है सामने से प्रमोद आता है)

प्रमोद—प्रिये ! इस समय कहाँ से आ रही हो ?

कामना—मंगलागौरी का पूजन करके ?

प्रमोद—इतना अंध विश्वास ? बाहर रे हिन्दूधर्म और
हिन्दू समाज !!

कामना—हिन्दू समाज ! क्यों हिन्दू धर्म में क्या बुराई है ?

प्रमोद—वह किसी को दिखाई नहीं दे रहा है । ब्राह्मण
पूजा पाठ से पृथक हो, धन के लिये हिन्दुओं के यहाँ
भोजन बना रहे हैं । फिर भी अपने को पूज्य समझ, संसार को
पैरों से ठुकरा रहे हैं ।



बड़े बनते हैं खुद औरों को ये छोटा समझते हैं ।
बने हैं धर्म के लीडर मगर ये धन को तकते हैं ॥
बनाए व्रत कथा और पर्व लाखों मनसे गढ़ गढ़ कर ।
पुजाके सैकड़ों पत्थर यह अपना पेट भरते हैं ॥
कामना—प्रभो ! आप हिन्दू होकर हिन्दू जाति की निन्दा
कर रहे हैं ? मूर्तिपूजन की अवहेलना कर विप्रों को अनादर
की दृष्टि से देख रहे हैं !

प्रमोद—इसलिये कि:—

बन रहे ब्राह्मण हैं सेवक, शूद्र, व्यापारी किसान ।
किस लिए करती है हिन्दू जाति फिर विप्रों का मान ॥

कामना—इसलिये कि:—

भूली न हिन्दूजाति विप्रों के परम उपकार को ।
दिव्यज्ञान दिया इसी ने नाथ ! सब संसार को ॥
विप्र ही क्यों त्रयवर्ण भी कर्म से हैं गिर गए ।
क्या करें महिसुर जब खुद धरम से गिर गए ॥

प्रमोद—किन्तु ब्राह्मण के आडम्बर से हमारा कितना
नाश हो रहा है इसे मैं खूब जानता हूँ । इनके द्वारा हिन्दू धर्म
में कितना उलट फेर हो गया उसे मैं भली भाँति देखता हूँ ।

धर्म हिन्दुओं का अब केवल दिखाने के लिए ।
पूजते पत्थर को धन और मान पाने के लिए ॥
लाखों ही ईश्वर बना डाले पुजाने के लिए ।
ढोंग है विप्रों का सब पैसा कमाने के लिए ॥
घर में हिन्दू कृश्चियन होटल में करते शर्म हैं ।
अब तो आडम्बर के परदे में छिपा सब धर्म है ॥

कामना—नाथ ! हिन्दूजाति के लाखों प्रकार की मूर्तें



पूजने का यह अभिप्राय नहीं है, कि ईश्वर लाखों हैं। वरन् हिन्दू जाति यह दिखलाती है कि ईश्वर हरेक रूप और हर वस्तु में विद्यमान है।

दुँड़िए इस धर्म की हर बात के हर मर्म को।

आप ही फिर पूजिणा इस सनातन धर्म को ॥

प्रमोद—प्रिये ! मैंने इस सनातन धर्म को आर्य समाज के चश्मे द्वारा अच्छी तरह से देख लिया है।

कामना—परन्तु यदि आप हिन्दू धर्म का वास्तविक रूप देखना चाहते हैं, तो अपनी आँखों पर से अन्य धर्म के चश्मों को उतार दीजिए। फिर आप देखेंगे कि सनातन धर्म क्या है ?

गौतम कपिल के ज्ञान का भंडार यही है।

सीता सती के सत्य का श्रृंगार यही है ॥

रघुवर की पितृ भक्ति का आधार यही है।

पूजा में मूर्ति के चमत्कार यही है ॥

प्रह्लाद ने दिखाया चमत्कार नाम का।

पत्थर से प्रगट कर दिया आकार राम का ॥

प्रमोद—तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि ईश्वर पत्थर की मूर्ति में है और उसका पुजारी उससे मिल सकता है ?

कामना—अवश्य ! जो सर्व शक्तीमान् भगवान् हैं वह पत्थर तो क्या, संसार के एक एक परमाणु में विराजमान हैं:-

मारकण्डे ने दिखाया मूर्ति पूजा का प्रताप।

पाषाण मूर्ति से ही प्रगटे भक्त हित हुए आप ॥

धर्म पर चलने के पहिले श्रद्धा भक्ती चाहिए।

ईश दर्शन हित अलौकिक प्रेम शक्ती चाहिए ॥

प्रमोद—तो तुम इस बात को मानती हो कि ईश्वर प्रेम मय है, वह किसी मूर्ति में नहीं बल्कि प्रत्येक स्थान में रहता है।

कामना—अवश्य।

प्रमोद—फिर मूर्तिपूजन के लिए क्यों जाती हो ?

उसे दिल में बुलाओ दिल से पूजो प्रेमी दिलबर को।

भला जाती हो क्यों तुम पूजने मन्दिर में ईश्वर को ॥

नहीं बस्ती में बसता, भाव में जो विश्व भरता है।

करो उस मूर्ति का ध्यान, जो भव दुःख हरता है ॥

कामना—अच्छा तो आपही बतलाइए कि मैं किस मूर्ति का ध्यान धरूँ ? चन्द्र, सूर्य, आकाश तारे, अग्नि, जल, किसकी उपासना में रत रहा करूँ ?

कहो किस मूर्ती को मन के मन्दिर में बिठाऊँ मैं।

कहो किस नाम की रसना से अपने गट लगाऊँ मैं ॥

कोई साधन बताओ हो प्रभू के पहिचान करने का।

हमें सारंग बताओ दूसरा हरिध्यान धरने का ॥

प्रमोद—चलो उस राह से प्यारी जो वेदों ने बताया है।

जपो एक ओम् को जो नाम सतियों को सेहाया है ॥

चढ़ालो प्राण मस्तक में सुनो अनहद के बाजे को।

लखोगी दिल के सिंहासन पै फिर दुनिया के राजे को ॥

न जाओ दूँदने गिरजा व कावः में प्रभुवर को।

अगर दूँदोगी मनमन्दिर में ही पावोगी ईश्वर को ॥

कामना—किन्तु ! जब तक किसी मूर्ति का ध्यान न होगा, तब तक उसका मान कैसे होगा ?

आप के ख्याल से जगदीश है साकार नहीं।

नज़र आयेगा कैसे जिसका कुछ आकार नहीं ॥



कल्पना की ही सही मूर्ति में वह बसते हैं।

एक ही मंजिल है जिसके हजार रस्ते हैं ॥

प्रमोद—यह ठीक है कि ईश्वर कहीं भी नहीं और हर वस्तुओं में विद्यमान है। परन्तु तुम्हारे धर्म की इस सूक्ष्म गति को जान कर भी संसार के डर से पतिपत्नी को भुला देने का जो दुःख है अकथनीय है।

कामना—नाथ ! यह कैसी बात ? क्या मैंने आपके और अपने सम्बन्धों को भुला दिया है ?

- भगवन् नेह का निधि नाथ इस काया की गागर में।

तुम्हीं बस्ते हो विष्णु से, हृदय के क्षीर सागर में ॥

हृदय वीणा के तारों पै तुम्हारा ' गान गानी हूँ।

तुम्हारे नाम की हर साँस में माला फिगती हूँ ॥

मेरे लेखे हो तुम अवतार नट नागर कन्हैया के।

खेवैया हो तुम्हीं स्वामी मेरे जीवन की नैया के ॥

प्रमोद—यदि ऐसा है तो फिर मुझसे भेद भाव कैसा ? केवल विलायत जाने के कारण मुझसे छूत अछूत का दिखाव कैसा ? जब तुम मुझे दैव तुल्य समझती हो तो मेरे प्रति ऐसा विचार क्यों करती हो ?

कामना—इस हेतु कि लोक और समाज के विरुद्ध होगा ?

प्रमोद—तो मैं यह समझ लूँ कि तुम धर्म पर नहीं, बल्कि लोक और रिवाज के झूठे रास्ते पर चलना पसन्द करती हो।

कामना—इस लिये कि ऐसा न करने से मर्यादा का हास होगा।

प्रमोद—पर लोक के भय से धर्म को त्याग देने पर धर्म का नाश होगा।



कामना—नाथ ! धर्म दिखलाने की नहीं, काम में लाने की वस्तु है ।

प्रमोद—तो क्या मर्यादा दिखाने की वस्तु है ।

कामना—अवश्य ?

प्रमोद—कैसे ?

कामना—ऐसे, कि जिस प्रकार रामचन्द्र ने यह जानते हुए भी, कि सीता महासती है, उसे लोक मर्यादा के लिये ही निर्वासित कर दिया था; किन्तु हृदय से पृथक् न करने के कारण वह धर्म से विमुख नहीं हुए थे । उसी प्रकार यदि मैं सब हृदय से आपके प्रति अपने नारी धर्म पर आरुढ़ हूँ तो इस लोकाचार के कारण धर्म भ्रष्ट नहीं हो सकती हूँ—

न दुख के भय से अपने पैर सत्-पथ से हटाऊँगी ।

सहूँगी दुख भले ही धर्म मर्यादा निभाऊँगी ॥

प्रमोद—अच्छी बात है । यदि समाज ने मेरे केवल इतने अपराध पर कि मैं विद्याध्ययन के लिये विलायत क्यों गया, मेरा सम्बन्ध त्याग दिया है, तो फिर मैं भी ऐसे समाज और धर्म का त्याग करता हूँ और आज इस समाज से अपने अपमानों का बदला लेने की

परमा०—(आकर) ठहरो भाई, ठहरो ! यदि समाज पागल हो गया हो तो तुम भी पागल न बना ।

(कामना घुबुट काढ़ कर अन्दर चली जाती है)

प्रमोद—कौन ? भाई परमानन्द !

परमा०—हाँ, तुम्हारा अनुचर । मुझे बड़ी प्रसन्नता इस बात की है कि आज मैं एक भारत माता को श्रेष्ठ सन्तान को विधर्मी होने से बचा सका । भाई ! समाज के इन्हीं अत्या-



चारों के कारण वर्ष में सहस्रों हिन्दू सन्तान इसाई वो मुस्लिम हो हो कर इस धर्म की जड़ पर कुठाराघात कर रहे हैं। परन्तु फिर भी इस धर्म के नेता पाँव फैलाये सो रहे हैं।

प्रमोद—जब धर्म के नेताही धर्म का नाश होते देख कर भी सो रहे हैं, तो फिर आप मुझे मेरे विचारों से क्यों रोक रहे हैं।

परमा०—इसलिये कि आप हिन्दू हैं और जो कर्त्तव्य इस धर्म के अन्य धर्म ग्राहियों का है, वही कर्त्तव्य आपका और मेरा भी है।

प्रमोद—किन्तु जब हमें समाज ने त्याग दिया है तो फिर हम क्या कर सकते हैं।

परमा०—बहुत कुछ ! यदि हम अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ हैं तो वह परमात्मा अवश्य हमारे शुभ कार्यों में हाथ बढायेगा। एक दिन विवश हो कर समाज को अपना नियम पारिवर्तन करना पड़ेगा और वह हमारा साथ देगा।

प्रमोद—फिर मैं क्या करूँ।

परमा०—चला हमारे साथ चलो और देश की सेवा कर मनुष्य जीवन सार्थक करो।

गाना।

जो करना नित्य पर उपकार जीवन उसका जीवन है।
 धर्म ही एक दुनिया के धनों में श्रेष्ठ तम धन है॥
 महामतिमंद है जो इस क्षणिक जीवन पर फूला है।
 हवा का वो है भोका और पानी का बबूला है॥
 हज़ारों मिट गये मिट्टी के पुनले बनके दुनिया से।
 निशा बाकी नहीं है चल बसे तन तन के दुनिया से॥

रहे दृढ़ धर्म पर जो दुःख में दिन जिनके बीते हैं ।
 अमर है नाम मरने के नहीं वे अब भी जीते हैं ॥
 सहे जो देश के दिन दुःख ! सहायक उनका भगवन् है ।
 उन्हें जंगल में मंगल है देश परदेश घर वन है ॥
 (गाते हुये परमानन्द के साथ प्रमोद का जाना)



बरामदे के साथ बाग ।

(बरामदे पर सरला विमला माला गुँध रही हैं, विनोद
 और धर्मदास बातें करते आते हैं ।)

धर्म०—आइए विनोद जी ! बिराजिए यही इस दरिद्र मित्र
 की भोंपड़ी है ?

विनोद—(कुर्सी पर बैठकर) मित्र ! इतना क्यों बनते हो ?
 कृपया थोड़ा जल मंगाने का कष्ट करो ।

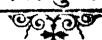
धर्मदास—अभी लाया ।

विनोद—नहीं नहीं आप न जाइये, किसी नौकर को
 भेज दो ।

धर्मदास—भाई ! नौकर आप जैसे महानुभावों के यहाँ
 रहते हैं । हम गरीब लोग तो खुद ही सेवक हैं ।

विनोद—तो फिर मुझे आवश्यकता नहीं है ।

(धर्मदास जाना चाहता है, विनोद रोकता है
 वह हाथ जोड़कर चला जाता है ।)



विनोद—अच्छा तो कपड़ा भी बदलते आइएगा, ८॥ बज चुके हैं थिएटर का समय समीप है । (धर्मदास सीढ़ी पर चढ़ता है विनोद उसे देखता है, एका एक उसकी नज़र बरामदे में बैठी हुई विमला पर पड़ जाती है ।) यह क्यों ? कलाधर की कान्ति को मलीन बनाने वाली रूपराश या सुन्दर छटा ? मन को लजाने वाली मनोहर मूर्ति ? यह स्वर्ग की अप्सरा है या संसार की सुन्दरता ? सृष्टि कर्ता की श्रृष्टि ऐसे सुन्दर रत्नों से सुसज्जित है, यह स्वप्न में भी मुझे गुमान न था ।

सरला—बहन विमला ! बस करो कितना फूल गुधोंगी, देखो माला बहुत बड़ी बन गई ।

विमला—तो बुरा क्या हुआ ?

सरला—अच्छा, अब सन्ध्या हो चली, चलो घर में चलें ?

विमला—चलती हूँ, फुलना तो लगा लेंगे दो ।

विनोद—अहा ! कामिनी के कोमल कर कुञ्जों में कुसुम कलिकाओं की गुथी हुई माला कैसी शोभा दे रही है, मानों भगवान शंकर से अपने पति देव को पाने के लिए रती, अपने कर कुंजों से पुनः सुमन शायक तैयार कर रही है ।

नैन शरका हो चुका है मुझ पै तो पहले ही बार ।

अब सुमन शायक से देखें किसका होता है शिकार ॥

सरला—अच्छा चलो, अब तो माला तैयार हो गई ?

(विमला उठना चाहती है कि वह मुर्च्छित हो जाती है, नेत्रों से दो बूँद जल निकल पड़ता है, सरला संभालती और आंचल से हवा करती है)

सरला—हैं यह क्या ?

चाँद पर वेवक्त ये यों श्याम घन छाये हैं क्यों ।

ओस के कण कञ्ज कलियों से ढलक आये हैं क्यों ॥

बहन ! तुम्हारे हृदय में किस व्यथा की बड़वाग्नि जल उठी, जिसे बुझाने के हेतु रूप सागर में क्रीड़ा करने वाले मृगलोचनों से अश्रु बिन्दू छलक गये ।

विमला—कुछ नहीं ! उठते समय हाथ आँख में लग गया था, जिसके दर्द से मैं निलमिला उठी थी ।

सरला—चलो घर में कुछ दवा आँखों पर लगा दूँ ।

विमला—तुम चलो, मैं स्वस्थ होकर आती हूँ ।

सरला—अच्छा ! जल्दी चली आना । (जाना)

विमला—गई, भोली भाली बालिका यह भी जान न सकी कि मुझे कौन सा दुःख है । आह ! निर्दई समाज की आँखों पर स्वार्थ की पट्टी बँधी हुई है, अन्यथा समाज देखता कि उसके अत्याचार से कितने परिवारों के हृदय में चिन्ता की चिता सुलग रही है और उसमें समता सहानुभूति और शान्ति का हवन हो रहा है । परमात्मन् ! मुझे शक्ति द कि मैं इस जीवन का परिवर्तन कर अपने परिवार को समाज के संकट से बचा सकूँ ।

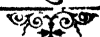
(सर झुका कर कुछ सोचती है, विनोद उसकी ओर देखता है,
धर्मदास जलपान लेकर आता है)

धर्म०—लो मित्र ! जल पीलो । (कन्धा हिलाकर) हैं ! किस ध्यान में निमग्न हो ?

विनोद—(चौंक कर) जल ले आये ?

धर्म०—मित्र ! किस विचार सागर में विलीन हो गये थे ? जो सुध बुध भी न रहा ।

विनोद—मित्र ! जिस तरह चन्द्र को देखते ही चकोर खुद को भूल जाता है । भ्रमर कमल के प्रेम में भूल कर समस्त



रात्रि उसकी क़ैद में धिताता है और पतंग दीपक के वश हो अपना प्राण गँवाता है, उसी भाँति मैं भी एक अर्द्ध विकसित पुष्प को देख कर खुद को भूल गया था ।

धर्म०—समझा । किन्तु वह पुष्प संसार सागर में निराधार बहा जा रहा है ।

नहीं मालूम क्या इस फूल को किस्मत दिखायेगी ।

लगेगी पार या सागर में कलिका डूब जायेगी ॥

विनोद—मित्र ! इस पहेली का अर्थ मैं न समझ सका ।

धर्म०—भाई विनोद ! लक्ष्मी तुम्हारे द्वार पर हाथ बाँधे खड़ी है । सौभाग्य का सूर्य तुम्हारा द्वारपाल है । फिर हम दीन दरिद्रों के दुख भरी कहानी का भाव तुम्हारे समझ में कैसे आयेगा ? अच्छा मैं तुम्हें इस पहेली का अर्थ समझाऊँगा । आशा है, तुम ध्यान से सुनोगे !

विनोद—अवश्य ! मैं समझने की कोशिश करूँगा ? कहो क्या कहते हो ?

धर्मदास—केवल यही कि सूखी डाल के हिडोले पर झूलने वाली कुसुम कलिका, समाज की कठोरता रूपी काँटों में फँसी हुई है । उसे निकालकर अपना लां । एक दरिद्र परिवार के लज्जा रूपी जहाज को, सागर में डूबने से बचा लो ।

चरण पूजूँ मैं निज परिवार की पत के खेवैया के ।

लगादो पार बन मल्लाह, अब इस नागी नैया के ॥

नहीं धन है तो क्या सेवा के बदले प्रेम पायेगा ।

मिलेगा धर्म का धन मान दुनिया में बढ़ायेगा ॥

विनोद—मित्र ! क्षमा करना पिता के रहते पुत्र का हस्त-



क्षेप करना अनुचित है। मैं पिता जी की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता।

धर्मदास—किन्तु आपके पिता तो धन के बिना कुछ नहीं कर सकते।

विनोद—फिर तुम्हीं बताओ की मेरा क्या वश है ?

निर्मला—(आकर) सब कुछ, यदि तुम चाहें तो सब कर सकते हो (विमला का हाथ पकड़े) जिस धन के लिए तुम्हारे पिता पाप की प्रचंड ज्वाला से भी नहीं डरते हैं—उसी धन को प्रमोद उनकी आँखों के सामने धर्म के लिए लुटा सकते हैं। तो क्या तुम एक हिन्दू अबला की धर्म रक्षा के लिये इतना भी नहीं करोगे, कि उसे विश्व सागर में डूबने से बचा लो ?

विनोद—वह दूसरी बात थी ! यह दूसरी बात है। प्रमोद भाई से केवल धन गया, मगर इससे मर्यादा चली जायगी ?

धर्मदास—यह कैसे ?

विनोद—ऐसे कि यदि मैं बिना उचित तिलक लिए व्याह करूँगा तो समाज कहेगी की लडके के खान्दान में कोई ऐब था, जो दहेज न मिला। और मुझपर दोषारोपण होगा कि इन्होंने पिता के विरुद्ध कार्य किया ?

निर्मला—परन्तु ! यह समाज का स्वार्थ है। इसी समाजिक संकीर्णता से कितने हृदयों में करुण का स्नात बहर रहा है। विनोद बाबू मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, मेरी लज्जा बचा लो। इस निराधार को अपनी सेवा में स्वीकार कर अपनी दासी बना लो।

(विनोद के पैर पर विमला को गिरा देती है)



डरो अधर्म से हटो मन धर्म से विनती हमारी है ।

न ठुकराओ इसे वेटा कि ये दासी तुम्हारी है ॥

विनोद—(स्वगत) प्रेम कहता है इसके भुजाओं कि माला
अपने गले में डाल लो, परन्तु समाज का नियम और पितृ
आज्ञा कहता है सावधान ऐसा न करना ।

धर्मदास—विनोद बाबू क्या सोचने हो, लो इस अनाथनी
का हाथ अपने हाथ में लेकर इसे सनाथ करो ।

विनोद—नहीं नहीं, मुझे जाने दो, मेरा हृदय धड़कता है ।

निर्मला—क्या अब भी अस्वीकार है ।

विनोद—पुत्र, पिता की आज्ञा से लाचार है ।

(हाथ छुड़ाकर जाता है, सब आश्चर्य से देखते हैं, विमला रोती है)





मकान ।

(चंचला का गाते हुये प्रवेश)

चंचला—

गाना ।

नैना कोई न लगाये पानी में बहाय ॥ नैना०—
 पुरुषों के जब हाथ बिकी-
 तब सब अधिकार बहाती, नारी कहाये ॥ पानी०—
 नैन सैन पर मुहर लगाती ऐसी निष्ठुर जाती,
 निर्दय यह आये ॥ पानी०—

पानी पीना छान कर, व्याह करना जान कर । जब मनुष्य एक पैसे की हाँडी ठोक बजा कर खरीदता है तो इतना बड़ा सौदा, जिस पर हम औरतों का जीवन मरन है, क्यों न देख भाल कर करें । क्यों उस सागर में डुबकी लगायें जहाँ मोती के बदले धौंधा हाथ आये ? जब पहले समय में रमगियाँ स्वयम्बर रचा कर अपना पति बरती थीं, ता में भी उसके ही साथ व्याह रचाऊँगी जो धन कौशल से हमें जीतेगा । उसी के हाथ अपना जीवन सौंपूँगी, जो मुझे अपनी चातुरता और वीरता का परिचय देगा । कहावत है—“पानी पीना छान कर, पति करना जान कर ।”

(सुधारक का आना)

सुधा०—ठीक ! बहुत ठीक !!



बिना विचारे जो करै, सो पीछे पछताय ।

काम बिगाड़े आपनो, जग में होत हँसाय ॥

चंचला—सुधारक जी प्रणाम !

सुधा०—आयुष्मान् ! आयुष्मान् !! नन्दन कुञ्ज की भाँति हरी रहो—गंगा की भाँति भरी रहो ।

चंचला—आज ऐसे समय में कहाँ से आना हो रहा है ?

सुधा०—तुम्हारा प्रतिज्ञा पत्र बाँटकर ! शहर से राजघाटपर !

चंचला—परिणाम ?

सुधा०—रोटी के लिये दो बन्दर उछल रहे हैं, पर हाथ न फँस जाये इस बात से डर रहे हैं ।

चंचला—दाता जी ! आज कल के पुरुष बड़े ही निष्पुरु और स्वार्थी होते हैं ।

सुधा०—बड़े ही कृतघ्न लोलुप होते हैं ।

चंचला—अपने समय पर कुत्ते की तरह दुम हिलाते हैं और समय निकलने ही ताने की तरह बदल जाते हैं ।

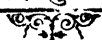
सुधा०—ठीक । शेर की तरह गुराँते हैं । अपनी सभ्यता दिखाते हैं ।

चंचला—यह पुरुष ऐसे हैं, कि अपने लिये संसार में सब कुछ खर्च कर सकते हैं, पर घर की स्त्री को आधी रोटी ज्यादा खाते नहीं देख सकते हैं ।

सुधा०—इस हेतु कि स्वयं पैसा पैदा करते हैं ।

चंचला—नहीं, इस हेतु कि हमें निर्बल और तुच्छ कहते हैं । घर की दासी समझते हैं ।

सुधा०—बहुत ठीक ! हमारे ही घर में चोरी करते और हमीं से साहुकार बनते हैं ।



चंचला—देखिये, अब इस प्रतिज्ञा के चौसर पर जो चातु-
रता से बाजी जीतेगा, मुझे अपने पुरुषत्व का परिचय देगा...

सुधा०—वही विवाह मण्डप में शादी करेगा ।

चंचला—जरूर ! इनकी यही दवा है कि हर समय इन्हें
नाक तोड़ उत्तर देने रहो । यदि यह एक कहें तो उलट कर
इन्हें चार कहो ।

सुधा०—अच्छा तो कल विवाह के मैदान में दो बन-
मानुष आने वाले हैं । तुम अपने प्रस्ताव को सुनाना । यदि
'ना' कहें तो कान पकड़ कर हवा खिलाना ।

चंचला—आप भी हमारे नियमानुसार उनसे सौगंध ले
लेना अपने दक्षिणा के लिये उनकी जेब टटोल लेना ।

सुधा०—भला इस ब्राह्मण को भी है कुछ कहना ।

चंचला—प्रणाम !

सुधा०—आयुष्मान् !

चंचला— गाना ।

किसी निष्ठुर से दिल को लगाना नहीं ।

हैं यह कपटी पुरुष इनको जाना नहीं ॥

जब तक यौवन रूप है तब तक इनका प्यार है ।

अस्त हुआ जब रूप-सूर्य का करते मिट्टी खवार हैं ॥

बिना समझे इन्हें अपनाना नहीं ॥ किसी०—

मीठे बचनों से यह मन को चरण में बश कर लेते हैं ।

कली कली रस लेके निर्दय फिर बाद में ताने देते हैं ॥

देखो इनके फन्दे में कैई आना नहीं ॥ किसी०—

(गाते गाते जाना)



(नगर से मिला हुआ गंगा का किनारा गंगा में घाटियों के तख्ते लगे हुए हैं घाटिया बँटे हैं । एक तख्ते पर नाक दबाए सेठ जी मन्थ्या कर रहे हैं—कंचनी वेश्या गृहस्थ औरत के भेष में हाथ में फूल से भरी डाली लिए कृष्ण का भजन गाती हुई आती है)

गाना ।

दीजै दरस विहारी ॥ दीजै०—

जाऊँ तुम पर वागी—बलिहारी सुखकारी ॥ दीजै०—

मोर मुकुट शिर छत्र विराजै—रु है वैजन्ती धारी ।

कोई कहे है देवकी नन्दन कोई जपे नटवर-गिरधारी ॥

वागी, बलिहारी, सुखकारी ॥ दीजै०—

सब—वाह ! वाह !! स्वर की माधुर्यता में अमृत का बूंद टपक रहा है ।

१ घाटिया—आओ जजमान ! आज तो आपने वह अमृत बरसाया कि हमलोगों की आत्मा तृप्त हो गई ।

२ घाटिया—अजी मुझे तो ऐसा जान पड़ा मानों कोयल कूक रही है ।

दौलत चन्द—सीताराम म्हे तो माल फेरना ही भूल गयो । सीताराम ३ ! के बतावा ऐसो गावनो तो याँ जनम नही आज ही सुन्यो है । सीताराम !! (आँख बन्द कर माला फेरने लगते हैं)

कंचनी—तनिक जल दीजिये महाराज ।

१ घाटि०—लो यजमान ! (जल देकर संकल्प बोलता है, वह जल सर पर ढाल लेती है । घाटिया, कंचनी के आगे आगे तट पर जाता है एक स्त्री स्नान करती रहती है उसे हटाता है) जरा हट जावजी ।

कंचनी—नहीं, महाराज रहने दीजिये, मैं इसी तरफ नहा लूँगी ।

१ घाटिया—नहीं सरकार ! इधर सीढ़ी अच्छी है । (स्त्री के वस्त्रों को लात से फेंक देता है) सुनती नहीं, पन्द्रह दिन नहा कर अमावस्या पूर्णिमा को कहीं आध सेर आँटा देगी और सारा घाट छँक रखा है । (वेश्या से) आइये, सरकार ! स्नान करिये ।

कंचनी—महाराज ! धोती तो ऊपर ही भूल गई ।

(वेश्या का हाथ पकड़ कर जल में उतारता है)

१ घाटिया—आप स्नान करिये, मैं अभी लाया ।

(वेश्या बगल की मढ़ी में चली जाती है, घाटिया धोती लाकर देता है, माणिकचन्द का अपने नौकर बुधुआ के साथ प्रवेश)

२ घाटिया—सरकार की बढती रहे । गंगा माई बाबू को बनाये रखें । (घाट पर नौकर कपड़ा रखता है, रायसाहब के लिये एक कुश का आसन बिछा देता है) बैठिये सरकार !

माणिक०—बैठता हूँ । (घड़ी देख कर) बुधुआ ! इतना समय होगया, कही वह नहा कर चली तो नहीं गई ?

बुधुआ—कितना बजा सरकार !

माणिक०—६ बजता है ।

बुधुआ—आने का समय तो यही है ।

२ घाटिया—श्रीमान् ! किसका इन्तज़ार कर रहे हैं ?



माणिक०—एक मित्र हैं । उन्होंने मुझसे सुबह ही आने का वादा किया था, परन्तु अभी तक दिखाई नहीं पड़े ।

२ घाटिया—आये तो थे सरकार, पर आपके आने में बिलम्ब देख वे चले गये । लीजिये उन्हीं की दी हुई यह चिट्ठी है, इसे पढ़ कर सब समझ लीजिये ।

माणिक०—ठोक है, अच्छा तो मैं उनसे मंदिर में ही मिलूँगा । बुधुआ ! कपड़ा उठा ले चल । लीजिये महाराज !

(एक रुपया दक्षिणा देना)

२ घाटिया—गंगा माई बनाये रखें ।

माणिक०—प्रणाम !

२ घाटिया—मनोकामना पूर्ण हो । (जाते हैं)

बुधूआ—(स्वगत) धिक्कार है ! ऐसे चिट्ठी पहुँचाने वाले घाटियें पर !

पाप का रस्ना बना रक्खा है सत् के बाट को ।

है किया दुष्कर्म का स्थान मन्दिर घाट को ॥

धर्म से श्रद्धा रहित क्यों कर्म संसारी बने ।

धर्म के नेता ही जत्र हैं पाप के व्यापारी बने ॥

१ घाटिया—वाह गुरु ! आज तो चाँखा रंग है । (जाना)

२ घाटिया—हाँ भंग के लिये तो काफी है, पर तुम क्यों रोते हो, तुम्हारी तो पाँचों अँगुली घी में है ।

(कंचनी तख्ते पर आकर बाल बनाती है और घाटिया चंदन

घीसता है दूर पर एक मकान से खिड़की खोल कर

विमला झाँकती है)

विमला—ओ निर्दयी हिन्दू समाज ! आँखें खोल कर देख, कि तेरे अत्याचार भरे व्यवहारों के कारण इस तरह समाज

की एक कुँआरी कन्या अपने परिवार के शान्ति-हित अपना जीवन देने के लिये विवश हो रही है । मातु गंगे ! संसार में मेरे लिये स्थान नहीं है । स्वार्थी समाज धन के बिना किसी का भी आदर नहीं करता । उसने मेरे इस अपराध पर कि मैं निर्धन पिता की कन्या क्यों हुई, मुझे पैरों से ठुकरा दिया, तुम माता हो, सन्तान को अपने चरणों में स्थान दो । अधम उद्धारणी ! मेरा उद्धार करो ! (गंगा में कूद पड़ती है)

१ घाटिया—हैं ! धमाका कैसा ?

कंचनी—वह देखो, उस खिड़की से कोई स्त्री कूदी है ।
पंडा जी ! जल्दी करो उस डूबने से बचाओ ।

(घाटिया पानी में तैर कर विमला को बाहर ले आता है)

दौलत०—याँ के, सीताराम २ !! बाबा, याँ से सटक, नहीं तो पुड़िस आ जायेगी, तो मुफ्त माँ गवाही माँ जाना पड़ोगे ।

(दौलतचन्द धोती सम्हालते माला लिये भागते हैं)

सब आश्चर्य से देखते हैं)

देला ।

डाप-सीन



मकान ।

(श्यामा चरण पलंग पर ज्वर में पीड़ित पड़े हैं, निर्मला नीचा सर किये रो रही है । सरला सिरहाने खड़ी पंखा झल रही है, धर्मदास दवा लिये खड़ा है)

धर्म०—दवा पी लीजिये पिता जी ।

श्यामा०—नहीं, अब दवा की कोई जरूरत नहीं है । अब मान ही न रहा तो इस शरीर को ही रख कर क्या करूँगा ।

स्वर्ग धनी को, निर्धनों को नर्क यह संसार है ।

विश्व में जीने का धनवानों को बस अधिकार है ॥

धर्म०—पिता जी !

श्यामा०—चुप रहो ! मेरे फटे हुये हृदय के जखमों को छेड़ कर मेरा दुःख न बढ़ाओ । आह ! जिस पुत्री के लिये मैंने अपने स्वर्ग को नर्क बना दिया, जिस संतान के स्नेह में अपने सूखी जीवन को दुःख से बदल डाला, जिन बच्चों के लिये अपने अभिमान को त्याग कर समाज के आगे सिर झुकाये हुये हाथ फैलाने को तैयार था, आज उसी ने अपने छणिक सुख के लिये मेरे परिवार के हृदय में अग्नि प्रज्वलित कर दी है । जिसमें सुख, शान्ति, मान और गौरव का हवन हो रहा है । देखो, धर्मदास ! देखो, यही इस स्वार्थी संसार की ममता और प्रेम का बदला है । मुझे अब इस जगत से घृणा

हो गई है। मुझे इस मानसिक दुःख से छूट जाने के लिये मरने दो।

एक भले होने से होता सबका मुख उज्ज्वल नहीं।
पर बुग हो एक तो कुन को भिजना कन नहीं ॥
दे बुम्मा इस आग को, सागर में इतना बल नहीं।
धो सके यह कालिमा भी गंगा में इतना जल नहीं ॥
मान का दीपक बुम्मा कोई जला सकना नहीं।
क्यों जियें संसार को जो मुँह दिखा सकना नहीं ॥

धर्म०—यह सही है। पर विमला पापिनी होगी, मेरी आत्मा यह स्वीकार नहीं कर सकती। मेरा हृदय कहता है उसे अवश्य दूँटना चाहिये। यदि अन्याई अविवेकियों के अपवाद से बचना है तो उसे खोजना चाहिये।

निर्मला—मुझे विश्वास है कि मेरा दूध इतना पतित नहीं हो सकता। मैं दृढ़ता से कहती हूँ कि जब तुम उस पावोगे तब विश्व त्यागिनी के भेष में उसके मुख पर ज्योति का प्रकाश पाओगे। या आत्माभिमान के सागर में डूबी हुई उसकी लाश पाओगे।

पा नहीं सकते उसे तुम पापिनी के रूप में।

रह नहीं सकता अंधेरा दिन मणी की धूप में ॥

सरला—माता ! तुम ठीक कहती हो। मैंने भी बहन के मुख से कई बार आत्म-हत्या की बातें सुनी थी। वह अकसर कहा करती थी, कि इस निरुत्तर संसार के अत्याचार सहन करने से मरना ही अच्छा है। हा बहन ! क्या अब सचमुच तू इस संसार में नहीं हो ? (रोने लगती है विमला, कंचनी बेश्या के साथ साथ आती है)

विमला—मौत के मुख में गई किन्तु मग्ने न पाई ।

विश्व के देखने को फिर यहाँ लौट आई ॥

सरला—(लिपट कर) कौन मेरी बहन !

विमला—हाँ ! वही दुःखियारी बहन !

निर्मला—बेटी ! तू कहाँ गई थी ?

विमला—काल और कर्म से युद्ध करने ।

कंचनी—लो देवी ! अपनी सती कन्या के साथ, इस पाँच हजार की थैली को स्वीकार करो और इस स्वार्थी समाज का मुख इन चाँदी के टुकड़ों से बन्द कर दो । अपनी भोली कन्या की जीवन नैया को, दुःखाधार से बचाओ—हमारी सेवा स्वीकार कर अपनी कन्या को अपनाओः—

द्रव्य ही माना पिना स्वामी वो तावेदार है ।

धन ही है धर्म जगत में और धन कर्तार है ॥

ज्ञान और सन्मान धन है धन ही सच्चा याग है ।

धन नहीं हो पास तो मग्यट यही संसार है ॥

धन हड़पने को बने हैं सब सामाजिक गिवाज़ ।

धर्म की है डींग धन का है भगत साग समाज ॥

श्यामा०—हे भगवन् ! यह मैं क्या देखता हूँ ! विमला और उसके साथ ५ हजार रुपये ? जिन रुपयों के लिये मैंने बड़े बड़े धनी मित्रों के आगे हाथ फैलाया, अधिक से अधिक सुद देना स्वीकार करके गिड़ गिड़ाया, कलेजे पर पत्थर रख कर अपना धर्म संकट सुनाया, पर किसी ने न सुना, वही धन सहज में यदि आ गया तो अवश्य इसमें कोई भेद है ? हा ! जो संसार, धर्म के लिये एक पैसा भी नहीं देता है, वह पाप खरीदने के लिये सहस्रों लूटा दे रहा है ।

विमला—पिता जी !

श्यामा०—हट जा, हट जा, कुलटा ! तू मेरी आँखों के सामने से हट जा, नहीं तो यह पिता के प्रेम-पूरित कर, फाँसी का फन्दा बन कर तुझ पापिनी के गले को दबा देंगे। भला चाहती है तो अभी मेरे घर से निकल जा ?

विमला—निकल जाऊँ, मेरा अपराध ?

श्यामा०—अपराध पूछती है ? निर्लज्ज मुझसे नहीं अपने हृदय से पूछ, जो तेरे कुकर्मों से काला पड़ गया है।

तेरा अपराध तेरे दिल पै नश्वर मारता होगा।

न मुझसे पूछ कि दिल तुझे धिक्कारता हागा ॥

मुझी से क्या सुनेगी जग में तू धिक्कार लाखों से।

न देखेगा कोई दुनिया में तुझको नेक आँखों से ॥

कंचनी—क्षमा कीजियेगा ! आप क्रोध के वश हो कर अपनी बुद्धि से हाथ धो रहे हैं। एक निष्कलंक-मयंक का कलंकित कर रहे हैं।

धर्म०—यदि ऐसा है तो तूही बता कि यह द्रव्य कहाँ से आया ? यह द्रव्य इसने किस उपकार के बदले में पाया है !

एक ही उत्तर है इस सन्देह का है खातमा।

निःप्रयोजन धन लुटाये वो कौन है धर्मात्मा ॥

विमला—वह धर्म की देवी यह हैं। जिस पर आप बे समझे बूझे वाच्य बाणों के बौछार कर रहे हैं। वह दयालु हृदय सन्मुख है, जिस पर आप वार कर रहे हैं।

(गोकुलचन्द और रामसिंह का प्रवेश)

गोकु०—धर्म की औतार कौन ? ये बाजार में बैठने वाली बेश्या ? धिक्कार है, विमला ! तेरी बुद्धि पर धिक्कार है।

श्यामा०—क्या कहा वेश्या ? वेश्या ! कौन है वेश्या ! कहाँ है वेश्या ?

राम०—यह है वेश्या ! तुम्हारी बेटी अपना पाप छिपाने के लिये उसे सती बता रही है । श्यामाचरण जी ! मुझे दुःख से कहना पड़ता है कि तुम्हारी कन्या ने कल की रात इस वेश्या के यहाँ बितायी है । जिसके उपलक्ष में यह ५ हजार की थैली आपके पास आयी है ।

गोकु०—और यह समाचार पाकर ही मुझे आपको सावधान करने के लिये यहाँ आना पड़ा है । अब भी यदि भला चाहते हैं तो इस पापिनी से कोई संसर्ग न रखिये । अन्यथा समाज आपका कभी साथ न देगा ।

श्यामा०—हे...भ... ग...ब...न...

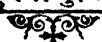
(बेहोश होकर गिर पड़ता है धर्मदास सँभालता है)

कंचनी—चुप रहो, चुप रहो, ओ समाज के विपैलें कीड़ों ! चुप रहो ! अपने जलने के लिये अपने मुख से अग्नि के शाले न उगलो ।

धर्म०—बस, ओ व्यभिचारिणी नारि ! तू भी अपना मुँह बन्द कर भले घर की बहुबेटियों को फुसला कर सतपथ से गिराने वाली ! तुझे इस भाँति बढ़ बढ़ कर बातें करते हुये लज्जा नहीं आती ।

विमला—भाई क्षमा करो । मुझे जो चाहे कहो, पर इस करुणा मई देवी को अपवाद न लगाओ ।

श्यामा०—निकल जाओ, निकल जाओ । तुम दोनों इस घर से अभी निकल जाओ । अन्यथा इस विदीर्ण हृदय की आह से जल कर भस्म हो जाओगी । आह ! तुम्हीं दोनों ने



हमारे हृदय कोष को, अपने कुकर्मों हाथों से तोड़ कर उसके मान धन को लूट लिया है। क्या संसार में ऐसा कोई कानून नहीं है, जो ऐसे लुटेरों से बदला दिलाये। आह ! संसार शून्य दिखाई पड़ता है। विश्व अंधकार मय प्रतीत होता है। मान हीन यह जीवन, भार हो रहा है। ओ स्वार्थी समाज ! तू हमारे दुःखों पर आज हँस रहा है, परन्तु कल यह सारा संसारा तेरी क्रूरता पर हँसेगा ! अच्छा हँसो, हँसो, खूब हँसो। दूसरों का दुःख देखकर हँसना भारतवासियों की पुरानी बात है, पर अब मुझसे नहीं सहा जाता है। हृदय से शीश तक अग्नि प्रज्वलित हो उठी है। चारों ओर समाज भयानक मृत्यु का रूप धारण किये मुझे निगलने के लिये आ रहा है। थू है, ओ समाज और समाज के नियम ! बस इस संसार में तू ही रहेगा या मैं। (पिस्तौल निकाल कर गोर्ल मार लेता है)

ओ३म्.....शान्ति.....शान्ति.....शा.....न्ति.....!

निर्मला—हा ! नाथ !! (लाश पर गिर पड़ती है)

विमला—हा ! पिता जी !! पिता जी !!! (लाश की ओर हाथ बढ़ाती है। धर्मदास उसका हाथ पकड़ कर हटा देता है)।

धर्म०—दूर हो पापिन ! तुझे इस पवित्र शरीर को छूने का कोई अधिकार नहीं है।

जान दी संतान के कर्मों से बूढ़े बाप ने।

नाश कर डाला हमारे घर को तेरे पाप ने ॥

(सबका शोकातुर)

टेब्ला ।



मार्ग !

(रायसाहब के साथ रामसिंह गोकुल बातें करते आते हैं)

राय० सा०—क्या श्यामाचरण ने आत्म हत्या करली ?

राम०—हाँ और उस पाप के भागी हुये हम लोग ।

गोकु०—वाह ! हम लोग क्यों पाप के भागी हागे ! हम लोगों ने तो वही कहा जो सत्य था ।

राम०—सत्य था या नहीं, यह तो भगवान् ही जानता है । किसी ने उसे पाप करते ता देखा नहीं था ?

राय सा०—अजी, ईश्वर को कोई आँखों से थोड़ी ही देखता है, वरन् बुद्धि से पहचानता है । फिर जब वह एक रात वेश्या के मकान पर रही, तब यह कैसे मान लिया जाय कि वह पाप से बची होगी ।

गोकु०—उस पर पाँच हजार की थैली । रामसिंह ! तुम्हीं कहो कि धन के लिये धर्म, रूप और यौवन को बेचने वाली वेश्या, क्या योंही किसी का इतनी रकम दे सकता है ।

रा० सा०—अजी ! जब किसी रईस ने अपनी वासना की अग्नि बुझा कर १० हजार दिया होगा तब कहीं ५ हजार उसके हिस्से में आया हागा । खैर अब इस भगड़े को छोड़ो और यह कहो कि वह रूप की रानी गई कहाँ ।

गोकु०—यह तो नहीं कह सकता । पर जब उसके भाई ने उसे घर से निकाला था, तो कंचनी वेश्या भी उसके साथ थी ।

रा० सा०—हाँ ! तब तो वह ज़रूर ही उसे रूपके बाजार में बिठायेगी और उससे अपनी दुकान जगमगायेगी ।

गोकु०—बात तो ऐसी ही दीख पड़ती है ।

रा० सा०—तो उसका पता लगाना चाहिये और जैसे भी हो सके उस परी को अपनाना चाहिये ।

राम०—अपनाना चाहिये ! किसे ? जिसे पापिन जान कर समाज से बहिष्कृत कराने के लिये इतना बड़ा षड़यंत्र रचा गया, जिसके साथ आपके पुत्र का व्याह होने वाला था ?

समझ पापी घृणा करते थे उस पर स्नेह दृष्टी है ।

जो बनने को पतोहूँ थी उसी पर पाप दृष्टी है ॥

गोकु०—अजी वह सब तो व्यर्थ की बातें थीं । राय साहब तो पहले ही से उसे चाहते थे । अगर उनके बेटे से उसके विवाह की बात न चली होती तो आप खुद ही उससे विवाह की बात चलाते और यदि श्यामाचाण मंजूर कर लेते तो दस हजार देने के बदले उल्टे उन्हीं को १० हजार मिल जाते ।

राम०—तो फिर बेटे के लिये दस हजार क्यों माँगा गया ?

रा० सा०—क्यों ? हजारों रुपया खर्च कर लड़के को पढ़ाया लिखाया तो क्या दस हजार भी तिलक में न लेंगे ? फिर ऐसा पठित सुन्दर और बड़े खान्दान का लड़का क्या योंही मिल जायगा ? खैर छोड़ो इस पचड़े को और यह बताओ कि तुम इस काम में मेरा साथ दोगे या नहीं ?

राम०—कदापि नहीं ! मैं ऐसे घृणित प्रस्ताव पर शूकता हूँ । मैं नहीं जानता था कि एक भोली कन्या को झूठा कलंक



लगा कर, अपनी वासना बुझाने के लिये समाज से अलग कराया जा रहा है। अन्यथा मैं गोकुलदास की हाँ में हाँ मिलाने के लिये श्यामाचरण के मकान पर कभी न जाता। एक निरपराध कन्या का सर्वनाश कर सती के मौन मुख का शाप न लेता ?

रा० सा०—तो क्या आप हमारे मित्र नहीं हैं ?

राम०—था, पर अब नहीं। ओ समाज के जहरीले कीड़ों ! तुम वह भयानक जहर फैला रहे हो, जिसकी ज्वाला से समस्त हिन्दू-समाज जला जा रहा है।

बढ़ रहे हो पाप की पूँजी कमाने के लिये।

नर्क में तय्यार हो किस हेतु जाने के लिये ॥

भस्म कर डालेगी ये नापाक हस्ती आपकी।

जब भड़क उठेगी ज्वाला उस सती के आपकी ॥

रा० सा०—बस, चुप रहो। ज्यादा न बढ़ो। धर्म ज्ञान की रेल को अपनी लाइन से नीचे न उतरने दो। वे दिन भूल गये, जब तुम भी हमारे पास बैठ कर मदिरा के प्याले चढ़ाते थे। कवाब, कटलेस और मदनचाप उड़ा कर नशे में झूमते और इन्हीं रंडियों की हाँ में हाँ मिलाने थे ! उस वक्त यह ज्ञान शक्ति कहाँ चली गई थी ? यह तो वही मसल हुई, कि सत्तर चूहे खाकर बिल्ली हज को चली।

राम०—वह हमारी भूल थी। मैं उस वक्त यह नहीं जानता था कि आप जैसे श्रीमान् का साथ मुझे पाप-पथ का पथिक बना देगा ! मैं समझता था, कि यह वेश्यायें अपनी इच्छा से रूप और यौवन बेचती हैं, जो कि धनवानों के लिये बनाई गई हैं। उस समय नहीं जाना कि आप जैसे श्रीमानों द्वारा

इसी तरह यह समाज से अलग कराकर आत्म विक्रय के लिये मजबूर की गई हैं ।

तुम्हीं लोगों ने अबलाओं को सत विक्रय सिखाया है ।
 तुम्हीं लोगों ने निर्बल नागि को वेश्या बनाया है ॥
 तुम्हीं लोगों ने स्त्री-जानी पर ये जुल्म ढाया है ।
 तुम्हीं लोगों ने हिन्दू-जाति को नीचा दिखाया है ॥
 समाजिक खेत में किसने ये विप का बीज बोया है ।
 तुम्हीं लोगों ने हिन्दू-जाति का सर्वस्व खोया है ॥

रा० सा०—खैर, अगर हम तुम्हारी नज़रों में बुरे हैं तो बुरे ही सही । अब तुम हमारे यहाँ पालतू कुत्तों की तरह जूठा खाने और मेरे पैर के तलुवे को चाटने न आना ।

धर्म है तेरे लिये और अघ हमारे वास्ते ।
 मैं हूँ अपने रास्ते पर जा तू अपने रास्ते ॥

राम०—आपके यहाँ आता ही कौन है, जो आप न आने की धमकी देते हैं । ये धमकी मुझको नहीं, उनको दीजिये जो सब कुछ समझते हुए भी, पैसों के लिये धनवानों की हाँ में हाँ मिलाते हैं ।

पाप करने आपके द्वारे न आयेंगे कभी ।
 खुल गईं आखें तो फिर ठोकर न खायेंगे कभी ॥

गोकु०—चलिये श्रीमान् ! इस पागल को बकन दीजिये ।
 आप अपना काम कीजिये ।

दिखा चांदी का चाग लोभ का लासा लगाना है ।
 उड़ी जो हाथ से चिड़िया उसे फिरसे फँसाना है ॥

(दोनों का जाना)



राम०—गये, पापी पिशाच, अपने जलने के लिये अपने हाथ से अग्नि प्रज्वलित करने के लिये गये ।

चल रही चालें जगत में नित्य ही इस भौंति की ।

मिट रही है जिनसे इज्जत सर्व हिन्दू-जाति की ॥

आह ! स्वार्थी मित्र आँखों पर कपट की पट्टी बाँध कर मुझे नर्क गड्ढे में खींचे जा रहे थे । मैं नहीं जानता था, कि यह जाल एक सती के सत पर डाका डालने के लिये रचा गया है । पहले गोकुलदास के कहने से समझा था, कि विमला पापिन है । और पापिन के समाज में रहने से अनेक मतियों पर विष की वायु फैलेगी । किन्तु आँखें खुली तो देखा, मैंने इस दुरंगी-दुनिया में बड़ा धोखा खाया । अब इस अबला के सर्वनाश का प्रायश्चित करूँगा । परमात्मन् ! मुझे शक्ति दे कि मैं समाज के अत्याचारों का संहार कर अबलाओं का उद्धार कर सकूँ ।

गाना—

अकड़ते जा रहे हैं हिन्दू वासी मान धन खोकर ।
तो मल मल हाथ फिर गोते हैं विष का बीज बो बो कर ॥
मिट्टा डाला जो था सनधर्म भारत का प्रमुख एक दिन ।
गवायेंगे बची पूँजी भी जो थी इनकी सदा गेकर ॥
ये अपने पाप कर्मों से बनेंगे दण्ड के भागी ।
तो मल मल हाथ भँखेंगे धर्म धन से रहित होकर ॥
अटल ये विश्व की वाणी सुनो ऐ हिन्दू वाले तुम ।
गऊ अबला की आहों से जलोगे बस पतित होकर ॥

(गाते गाते जाना)



देव मन्दिर ।

(पंडे भगवान् श्रीकृष्ण की भारती कर रहे हैं)

सब—

गाना ।

जय जय कृष्ण हरे ! जय जय कृष्ण हरे !!
मधुसूदन कमलापति रामा, चक्र सुदर्शन धारी ।
नाग नथैया कृष्ण कन्हैया,
जय जय जय गिरधारी ॥ जय जय कृष्ण०—

सब—बालो, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की जय !

(कंचनो के साथ विमला का प्रवेश)

कंचनी—देवि ! अब मेरा साथ छोड़कर आगे जाओ और
पवित्रता की डींग मारने वाले कट्टर—हिन्दुओं के धर्म
आडम्बर का नमाशा देखो !

(विमला कंचनी का साथ छोड़कर मंदिर में मूर्ति के
सामने जा कर हाथ जोड़ती है)

१ भक्त—बाहरी भक्ता ! क्यों न हो ।

२ „ „ यार ! माल तो चौकस है ।

१ „ „ अवश्य फँसाना चाहिये ।

२ „ „ चलो पीछा करें, देखें कहाँ जाती है ।



१ भक्त—कहीं भले घर की हुई तो सलामत न बचेगे ।

२ „ , अजी नहीं, मैंने गंगा स्नान और देव मंदिरों में दर्शन करते २ हजारों घर घाले हैं । औरतों की चाल और हाव भाव देखकर ही बतला सकता हूँ, कि नेक है या बदचलना ! पति-भक्ता है या सोहबत पसंद !

१ भक्त—अच्छा तो यह कैसी है तुम्हीं बताओ ।

२ „ , , देखो, अभी बताता हूँ ।

(विमला से सटकर खड़ा हो जाता है)

विमला—हैं ! यह कौन ?

(हट जाती है, वह फिर वैसा ही करता है ।)

विमल—महाराज ! उधर से दर्शन कीजिये ।

२ भ०— दूर ता हैं ! यदि ऐसा ही था तो पुरुषों की भीड़ में क्यों आई । दर्शन तो हो गया । चलो अब बाहर निकलो ।

१ भक्त—अरे ऐसा क्यों कहते हो भाई ।

२ „ , , अरे, यार यह बाहर निकले तो अपनी ढाल गले ।

(राय साहब का प्रवेश)

पुजारी—हटो, सामना छोड़ दो ! आइये राय साहब !

रा० सा०—यह लीजिये महाराज !

(रुपया चढ़ाना, पुजारी का उन्हें माला पहनाना और चरणामृत देना, विमला हाथ फैला कर माँगती है)

विमला—महाराज ! चरणामृत हमें भी दीजिये ।

पुजा०—(क्रोध से) इन औरतों ने तो तंग कर डाला । बनती हैं सती साध्वी और मंदिरों में धक्के खाती फिरती हैं । चलो चरणामृत पाया, अपना रास्ता लो ।

(विमला बगल में हट जाती है, कंचनी आती है)

पुजा०—आओ भक्तिन जी ! हटो जी, भगवान का सामना छोड़ो।

(कंचनी अपने हाथ से भगवान् की पूजा करती है ।

पंडा जी भगवान् का चरणामृत देते हैं और माला

उतार कर पहना देते हैं ।)

कंच०—लीजिये महाराज ! दक्षिणा !

पुजा०—इसकी क्या आवश्यकता है । भगवान भक्तिभाव के भूखे हैं, धन के नहीं ।

कंच०—यह तो मैं भी जानती हूँ । पर यह धन भी तो भगवान की कृपा ही से मिलता है ।

पुजा०—परन्तु भगवान धन से अधिक अपने भजन द्वारा प्रसन्न होते हैं । आज आपका बहुत दिनों पर आगमन हुआ है । कहिये तां हारमोनियम मगवाऊँ एकाध भजन हो जाये ।

कंच०—जैसी आपकी इच्छा ! मैं आपकी आज्ञा नहीं टाल सकती ।

पुजा०—सेवा ! भगवान के सामने फर्श बिछाकर हारमोनियम लाकर रख ।

सेवा—जो आज्ञा ।

पुजा०—अच्छा तब तक आप प्रसाद पाकर जलपान तो करलें !

कंच०—जाते समय दे दीजियेगा । घर लेती जाऊँगी । और लोग भी तां पायेंगे ।

(फर्श बिछ जाता है । सब बैठते हैं, कंचनी हारमोनियम बजा कर गाती है)

गाना ।

ऐसो निठुर श्याम, गागर मोरी फोरी ॥ ऐसो०—

मैं जल यमुना भरन जात आली,

नन्द को छैल मोरी बहियां मरोरी ॥ ऐसो०—

सनद पिया मोरी कदर न जानी,

बहियां पकर चूड़िया मोरी तोरी ॥ ऐसो०—

सब—वाह ! वाह !!

राय सा०—लो प्रिये ! यह रिश्तवाच मेरी यादगार है ।

कंच०—(सलाम करके) बन्दी तो आपकी दासी है । (स्वगत)
ओ ! नरपिशाच ! जब तक मैं तुझसे अपना बदला न ले लूँगी
मेरी आत्मा को शान्ति न मिलेगी ।

(पुजारी भगवान का प्रसाद देता है । मन्दिर बन्द होता है)

कंच०—(विमला से) देवि ! इधर आओ ! और आँखें
खोलकर इस “दुरंगी-दुनिया” की सच्ची तस्वीर देखो । कहो,
हिन्दू धर्म का सबसे ऊँचा स्थान कौन है ?

विम०—जगत पिता भगवान का मंदिर ।

कंच०—फिर यहाँ किसका मान है ? तुम सी धर्म पर
बलिदान होने वाली नारी का, या धन के लिये धर्म बेचने
वाली वेश्या का ?

विम०—वेश्या का ।

कंच०—हिन्दुओं में सबसे श्रेष्ठ जाति कौन है ?

विम०—ब्राह्मण ।

कंचनी—और धर्म के आचार्य हिन्दुओं के गुरु कौन हैं ?

विम०—वही ब्राह्मण देवता !

कंचनी—फिर अब तुम्हीं कहो, वह किसका मान करते

हैं। बिचारो और उत्तर दो, कि हिन्दू समाज वेश्या से घृणा करता है या प्रेम ?

नजरो में सबके हैं मेरी सूरत गड़ी हुई।
उलफत मेरी हरेक के दिल में अड़ी हुई ॥
माला यह विष्णु को चढ़ी ब्राह्मण के हाथ से।
देखो है वेश्या के गले में पड़ी हुई ॥
रखन हमेशा ध्यान में घटना यह आज को।
तस्वीर नग्न देखलो हिन्दू समाज की ॥

विम०—हाँ देखती हूँ, बहन ! अच्छी तरह देखती हूँ, कि वर्तमान हिन्दू-समाज वेश्या बनाने की मशीन बन रहा है। घर में सती नारी को राती बिलखती छोड़ कर वेश्या क मंदिर में वासना की वेदी पर धनमान की भट चढ़ा रहा है। उपासना के स्थान को विलास का केन्द्र बनाने वाले, गंगा-स्नान और मंदिरों में दर्शन करने जाकर सतियों के सतीत्व पर डाका डालने वाले हिन्दू, हिन्दू नाम का मिटा देना चाहते हैं। "दुरंगी-दुनिया" के बाभ्र से हिन्दू धर्म की नौका को संसार सागर में डुबा देना चाहते हैं।

हाथी के दाँत की तरह इसके भी तौर हैं।
खाने के दाँत और दिखाने के और हैं ॥
फिर भी मैं अपने धर्म को हर्गिज़ न तजूँगी।
मर जाऊँगी फांसी से पर रगड़ी न बनूँगी ॥

कंच०—पर मैं यह कब चाहती हूँ, कि तुम वेश्या बनो।

विम०—फिर मुझे घर चलने के लिये क्यों कहती हो ?

कंच०—इस लिये कि तुम्हारे वास्ते मेरे घर के सिवाय कोई स्थान नहीं है।



विम०—स्थान नहीं है तो मैं धर्म रक्षा के लिये दुबारा मृत्यु की गोद में जाऊँगी ।

रखा न क्रौम ने मुझे 'दुनिया' में काम की ।

रखूँगी फिर भी लाज हिन्दू के नाम की ॥

कंच०—नहीं, मेरे रहते तुम्हें मौत का आशय न लेना होगा । देवि ! मेरा विश्वास करो । मेरे साथ चलो । मैं धन के लिये तुम्हें पतित न बनाऊँगी । अपना सारी सम्पत्ति तुम्हारे हेतु लुटा दूँगी, पर तुम्हारा सत्त न गँवाऊँगी । जिस प्रकार होगा किसी योग्य बालक के साथ तुम्हारा व्याह रचाऊँगी ।

विम०—मेरा विवाह तो हो चुका है ?

कंचनी—(आश्चर्य से) विवाह हो चुका है ? किसके साथ ?

विम०—जिसके पैरों पर मेरी माता ने आँखों के अर्घ्य में भरे हुये आसुओं के पानी को गिरा दिया था और जिसने मुझे कंगाल की कन्या जानकर पैरों से ठुकरा दिया था ।

दे दूँगी जान जाने न दूँगी कभी विवेक ।

होता है जग में हिन्दू-नारी का पति एक ॥

कंच०—ता फिर मैं प्रतिज्ञा करती हूँ तुम्हारे उसी पतिदेव से तुम्हारे प्रेम की भिक्षा मँगवाऊँगी । जिस तरह तुम उसके पैरों पर गिरी थी, उसी तरह उसे भी गिराऊँगी ।

बाजी हमारी यह कभी हर नहीं सकती ।

देखो जगत में वेश्या क्या कर नहीं सकती ॥

स्थान दिया जिसने न पैरों के पास में ।

देगा ज़िगर वो जानोजर वो ही विलास में ॥

(भागे २ कंचनी और पीछे २ विमला का प्रस्थान)



कंचनी का मकान ।

(विमला आइना लिये हुये आती है)

विम०—मैं सुन्दर हूँ, और अधिक सुन्दर हूँ । कंचनी मुझे पवित्रता की प्रतिमा और सुन्दरता की जीती जागती तस्वीर बताती है । मन चले नवयुवक, मुझे स्वर्ग की सुन्दरी कह कर मेरी ओर ललचाई हुई आँखों से देखते हैं । दुरंगी-दुनिया वाले मुझे रति और रंभा की उपमा से याद करते हैं । तो क्या मैं सचमुच सुन्दर हूँ । हाँ यह नागिन से काले २ बाल, सुन्दर गुलाबी गाल, मोतियों की लड़ी से मनोहर दाँत, सभी एक से एक बढ़कर हैं । तो क्या इसी का नाम सुन्दरता है । नहीं, अगर इन्हीं चीजों के होने से त्वी सुन्दर होती तो राय साहब के पुत्र, मुझे अपने पैरों पर पड़ी हुई देखकर भी निर्दयता से न ठुकराते ।

ठोक़ों से वह हमारे दिल का शीशा तोड़ कर ।

चल दिये हँसते हुये मुझको बिलखती छोड़ कर ॥

कंच०—विमला ! क्या सोच रही हो ? किस विचार सागर में गोते लगा रही हो ?

विम०—मैं सोचती हूँ कि कुण्ठित कुठार पर फिर से धार दी जा सकती है, पतझड़ होने के बाद वृक्षों में फिर से नवीन

पत्ते निकलते हैं, मगर हिन्दू नारी जिसका सम्मान समाज ने छीन लिया हो, उसे दुबारा नहीं मिल सकता है ।

ये ऋषि संन्तान हिन्दू दास हैं दुष्कर्म के ।

हैं छिपे गौरव के पदों में ये डाकू धर्म के ॥

कंच०—तभी तो यह जाति उठने के बदले दिनों दिन नीचे की ओर गिरती जा रही है ।

सती को वेश्या बनाकर दे रहे सम्मान हैं ।

जिस जगह गृहलक्ष्मी का हो रहा अपमान है ॥

क्यों न वह जानी मरे उस देश में दुष्काल हो ।

पाप के कर धर्म बेचें क्यों न वह कंगाल हो ॥

(रामचरण नौकर का प्रवेश)

राम०—बाई जी ! दो आदमी बाहर कमरे में आप के इन्तजार बैठे हैं । आज्ञा होतो बुला लाऊँ ।

कंच०—कौन साहब हैं ?

राम०—कोई नये लोग नज़र आते हैं ।

कंच०—अच्छा जाओ खानिर से लिवा लाओ ।

राम०—जो आज्ञा ।

(विमला का अन्दर जाना, नौकर के साथ परमानन्द और

प्रमोद का आना, कंचनी का खड़ी होकर स्वागत करना)

कंच०—आइये आइये बाबू जी ! पधारिये । (दोनों फर्श पर बैठने हैं) नहीं नहीं, इधर मसनद के सहारे बैठिये । यह जगह नौकरों के बैठने की है ।

परमा०—तो आप हम लोगों को भी अपनाही समझिये ।

हैं छिपे सीने के अन्दर भाव भी इस भेष के ।

कोई नौकर एक का है हम हैं नौकर देश के ॥



देश के नाते दया की भीख लेने के लिये ।

आये हैं इस जां तुन्हें कुछ कष्ट देने के लिये ॥

कंच०—तो बतलाइये, आप मुझ समाज से सताई, घृणा और तिरस्कार से देखी जाने वाला वेश्या से क्या चाहते हैं ।

परमा०—दया की भिक्षा ।

कंच०—किसके लिये ?

पर०—उसी निष्ठुर हिन्दू समाज के लिये । जिसने तुम्हें पैरों से मसल डाला है । देवि ! हिन्दू जाति पर दया करो । समाज की रीति आज घृणा के सागर में डूब रही है । माता ! उसका उद्धार करो ।

कंच०—माता ? क्या आपने मुझे माता कहकर पुकारा है ?

पर०—हाँ ।

कंच०—आपका नाम ?

पर०—परमानन्द !

कंच०—परमानन्द ! आप सचमुच परमानन्द हैं । अहा ! 'माता' के इस एक शब्द के महामंत्र से आज मेरी आत्मा आप के आधीन होगई ! हाँ, सुनाइये अपने मुखारविन्द से एकबार फिर वही मधुर मुरली की ध्वनि सुनाइये ! मैं अपना सब कुछ आपके चरणों पर निछावर करने को तय्यार हूँ । आह ! यदि मुझे स्वप्न में भी यह आशा होती कि इस "दुरंगी-दुनिया" में मुझे कोई आदर की दृष्टि से देखेगा, तो यह नारि आज नारकी कभी न होती !

कौम कहती थी मुझे वे मौत मरने के लिये ।

राह रक्खा ही न दुनिया में गुजरने के लिये ॥



की गई मजबूर यह रोजगार करने के लिये ।

बेचली थी धर्म पापी पेट भरणे के लिये ॥

क्रोम की कुचली जगत में बेसहारे मान बिन ।

वन रती लाखों हो नारी मुझसी रंडी गत दिन ॥

प्रमो०—और फिर भी इस निलज्ज जाति को लज्जा नहीं है ।

शोक ! हमारे एक सामान्य अपराध पर समाज से ठुकराई हुई करोड़ों औरतें इस पापी पेट के लिये, आत्मा को बेचकर हिन्दू-जाति के मुख में कालिख लगा रही हैं । क्या यह जाति, संसार के सामने मुख दिखाने योग्य है ? नहीं, कभी नहीं । जब तक यह हिन्दू समाज पतितों के लिये अपना बंद द्वार न खोलेंगा, तब तक इस जाति का उद्धार कदापि नहीं हो सकता ।

जिन्हें है पाप का साहस, धर्म के वास्ते डर है ।

जियेगा जालि क्या वह, जिस जगह नारी निगदर है ॥

कंच०—खैर, अब इन बातों-बातों का छोड़िये । और यदि आप इस जाति का कुछ उपकार करना चाहते हैं तो स्वयं आगे बढ़िये । कहिये, मुझे क्या आज्ञा है ?

परमा०—आज्ञा नहीं, प्रार्थना है कि तुम्हारी आँखों का चश्मा, जो हिन्दू जाति को डुबा देने के लिये प्रलय-सागर की भाँति उमड़ रही थी, अब उसे इस जाति का कलंक धोने के लिये कृष्ण का स्नान बनादो । अबोध बालिकाओं को, जो 'दुरंगी-दुनिया' में टोकर खाकर तुम्हारी शरण आती हैं उन्हें वेश्या होने से बचा लो ।

बिम०—(द्वार पर आकर) तो फिर अब तुम्हीं बताओ कि मेरे लिये संसार में इस घर के सिवा और कौनसा स्थान है ?



कंच०—बोलो, उत्तर दो, चुप क्यों हो गये ?

प्रमोद—यह यदि अलग मकान लेकर पूरी पवित्रता से रहना चाहें तो इनका सब खर्च देने को मैं तय्यार हूँ ।

विम०—कभी नहीं ।

प्रमो०—तीर्थ यात्रा में दिन काट सकती हो ?

विम०—कदापि नहीं ।

पर०—फिर तुम क्या चाहती हो ?

विम०—सत्य स्नेह और सच्ची सहानुभूति ! इधर देखिये यह घर धन, जन, वसन से इन्द्र का भवन बन रहा है, जहाँ संसार की सारी सुख की सामग्रियाँ एक साथ क्रीड़ा कर रही हैं, वहाँ भी मैं दूँदती हूँ, सत्य-प्रेम और सच्ची सहानुभूति ! बोलो २ यदि ये वस्तुयें तुम्हारे पास हों और उन्हें देने के लिये तुम में साहस हो तो कहो मैं अभी इस स्थान का छोड़ देने के लिये तय्यार हूँ । नहीं तो जिस अधर्मी समाज ने हमें डुबाया है, मैं भी उसे डुबाने से नहीं रुक सकती ।

प्रमो०—नहीं, नहीं, सत्य को असत्य के हाथों न बँचो । किसी के दुर्गुण पर अपने गुण को न भूलो ।

विम०—तो यह दासी सहर्ष तय्यार है । चलो मुझे अपनी कुल देवियों की सेवा सपुर्द करदो । मैं धन नहीं, मान चाहती हूँ । सुख नहीं, शान्ति चाहती हूँ ।

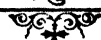
खों नहीं सकती कभी दुष्कर्म से निज कान्ति को ।

धन नहीं मैं चाहती हूँ धर्म, सच्ची शान्ति को ॥

हर समय तत्पर रहूँगी जाति हित के यत्न को ।

पर लूटाऊँगी न, हरगिज अपने नारी-रत्न को ॥

प्रमो०—परमानन्द जी ! क्या बिचार रहे हो ?



पर०—संसार और समाज का ध्यान मेरे सच्चे बिचारों से युद्ध कर रहा है ।

प्रमो०—विजय किसकी होगी ।

पर०—नहीं कह सकता ।

प्रमो०—तो फिर हट जाओ । इस समाज सुधार के मार्ग से हट जाओ । मैं हूँ सच्चे मार्ग पै भय नहीं करता हूँ अपयश का । समाजिक क्रान्ति में धरना कदम है काम साहस का ।

कंच०—तो तुम इसे अपने परिवार के साथ रखने के लिये तैयार हो ?

प्रमो०—खुशी से !

विश्व से डरता नहीं डरता हूँ मैं दुष्कर्म से ।

जग से हट सकता हूँ हट सकता नहीं मैं धर्म से ॥

जब कि रुकती है न हिन्दू-जाति अत्याचार से ।

जाति सेवक क्यों हटे फिर जाति के उद्धार से ॥

कंच०—तो इस अबला को अपने साथ ले जाओ । मगर याद रखो, यह अपने कुल की ही नहीं, वरन् सारे हिन्दू कौम की इज्जत है ।

देखना इसके प्रति दिल में खोट न आये ।

दिले नाजुक में कभी इसके चोट न आये ॥

प्रमो०—ऐसाही होगा !

फिर जाय जगत् जान और ज़र जाय तो जाये ।

जाने न दूँगा धर्म को सर जाय तो जाये ॥

सौगंद धर्म की कभी अनहित नहीं होगा ।

सेवक कभी धर्म से विचलित नहीं होगा ॥

विमला—तो मैं भी हिन्दू—जाति और हिन्दू धर्म के लिये नर्क से भी अधिक कष्ट सहन करने को तय्यार हूँ ।

कंचनी—होनाही चाहिये । शोक ! आज यदि हिन्दू जाति दलितों के प्रति ज़रा भी सहानुभूति रखती तो आज इस जाति की यह दुर्दशा न होती ।

राम०—(आकर) बाई जी ! बाबू साहब आ रहे हैं ।

विमला—आने दो । आज उनके प्रेम की भी परीक्षा लूँगी ।

पर०—परीक्षा लोगी ? किसकी ?

विमला—उसकी, भाग्य ने जिसकी बना दिया है ।

विधना से जिसके वास्ते बनाई गई हूँ ।

माता से जिसके पैर पर भुकाई गई हूँ ॥

एक बार जिसके पैर से ठुकराई गई हूँ ।

जिसके लिये समाज से सताई गई हूँ ॥

रंडी हुई मैं जिसके लिये खोके कुल की लाज ।

इम्तहान जी भरके लूँगी यहाँ मैं आज ॥

प्रमोद—वह कौन है ?

विमला—दासी के पति देवता !

साहस न जिसके पास रहा धर्म के लिये ।

आते हैं अब वही यहाँ दुष्कर्म के लिये ॥

था लोभ ने पहले जिसे दीवाना कर दिया ।

उसने अब मेरे कोष को दौलत से भर दिया ॥

इज्जत सती की कुछ नहीं, रंडी की शान है ।

है बना इस वास्ते कंगाल हिन्दोस्तान है ॥

विनोद—(अन्दर से) रामचरण !

राम०—लीजिये, सरकार आगये ।

विमला—उन्हें बाहर के कमरे में ठहराओ, मैं आती हूँ ।

राम०—जो आज्ञा ! (जाना)

विमला—अच्छा मेरे साथ चलिये, और ज़रा छिपकर 'दुरंगी-दुनिया' में रंडी के अधिकार का तमाशा देख लीजिये ।

पर०—जैसी इच्छा !

(सबका जाना)



बैठकखाना ।

(विनोद के साथ विमला का प्रवेश)

विनोद—लीजिये, यह आपकी फरमाइश हाजिर है । कहो, अब तो खुश हो ? (हीरे का कड़ा देना)

विमला—मगर मैं तुमसे नाराज़ ही कब थी, जो अब खुश हूँगी ?

दिल की खुशी हो, देह में भी जान तुम्हीं हो ।

मेरे लिये जहान में भगवान तुम्हीं हो ॥

तुम हो तो स्वर्ग मेरे लिये मकान है ।

वर्ना हमारे वास्ते दुनिया श्मशान है ॥

विनोद—यह सब दिल की नहीं, ज़बान की बातें हैं ।

अगर ये सच है जो जिह्वा से तुम एकरार करती हो ।

सवाले वस्त्र पर फिर किसलिये इनकार करती हो ॥



जलाओ मत मुझे तुम और अब उलफत की अग्री में ।
 लग जाओ गले जो दिलसे मुझको प्यार करती हो ॥
 सदा तैयार हूँ पैरों तले आँखे बिछाने को ।
 अगर मिल जाओ तुम तो छोड़ दूँ सारे ज़माने को ॥

विमला—क्या सत्य कहते हो ।

विनोद—हाँ सत्य कहता हूँ । और यदि इतने पर भी
 विश्वास न हो तो परीक्षा ले लो ।

विमला—अच्छा तो मुझ से जिन्दगी भर प्रेम निबाहने
 का बचन दो ! मेरे लिये संसार को छोड़ कर मुझसे बिवाह
 करलो ।

करो दो आत्मा को एक, रहें वह एक बन दो तन में ।
 जकड़ कर बाँध दो फिर, दो दिलों को ब्याह-बंधन में ॥
 न डर हो दूँदने का नेह के साथी बिधाता हो ।
 न केवल देह का हो, प्राण का स्थाई नाता हो ॥

विनोद—क्या बिवाह ?

विमला—हाँ, यदि मुझे सच्चे दिल से प्यार करते हो तो ?

विनोद—विमला…………… !

विमला—क्या कहना चाहते हो ?

विनोद—यह काम मेरे मन से तो बाहर नहीं है…………… ।

विमला—किन्तु ?

विनोद—किन्तु मेरी हिम्मत से……………

विमला—बाहर है ! तो लौट जाओ । वासना के बहाव में
 तैरने वाले पुरुष ! प्रेम के मार्ग से लौट जाओ ।

फूल के प्रेमी नहीं प्रेमी हो रंग औ वास के ।
 बन रहे हो किसलिये कारण हमारे नाश के ॥



जब बुढ़ोती की तपन से रंगो बू खो जायगी ।
तब तुम्हारे मनसे उलफत भी मेरी धो जायगी ॥
धर्म दे सकती नहीं मैं केवल धन के वास्ते ।
ढूँढ लूँगी राह अपनी जात्रो अपने रास्ते ॥

विनोद—नहीं नहीं, ऐसा न कहो । मेरे प्रेम पूरित हृदय का
निरादर न करो ! (दामन पकड़ता है)

विमला—बस बस, मुझे धोखा देने की चेष्टा न करो ।
(छुड़ाकर) छोड़ दो, मेरा आंचल छोड़ दो !

(गोबर्धन दास के साथ राय साहब का आना)

राय० सा०—हैं यह क्या ? मेरा बेटा और मेरी प्रेमिका
का बग़लगौर ।

कंच०—(आकर) हाँ यही है 'दुरंगी-दुनिया' की सच्ची
तस्वीर !

रा० सा०—शर्म कर शर्म कर ! ओ बे मुरव्वत बेहया रंडी !
शर्म कर । निलंज ! यदि तू पाप की कमाई खाते हुए नहीं
लजाती, तो इस बात को ज़बान पर लाते हुए शर्मकर !

कंच०—शर्म मुझको नहीं, इस दृश्य को देखकर तुम्हें
करनी चाहिये । जब तुम्हें और तुम्हारे समाज को, हम अब-
लाओं पर अत्याचार करते लज्जा नहीं आती, जब तुम लोगों ने
अपने द्वार से ठुकरा कर, हमें धर्म बेचने के लिये विवश कर
दिया, तो मैं क्यों लजाऊँ ?

धन को लेकर धर्म देना यह हमारा काम है ।

हैं नहीं यह धर्म-मंदिर वेश्या का धाम है ॥

सोचना यह तुमको चाहिये मुझको धन से काम है ।

नारि को वेश्या बनाने का यही परिणाम है ॥

राय० सा०—हे भगवान् !
 (राय साहब सर धर कर बैठ जाते हैं विनोद घबड़ाकर सबका मुँह देखता है)
 विमला—आइये परमानन्द जी ! अब मुझे इस नरकागार
 से निकाल कर शान्ति के मंदिर में ले चलिये ।
 (प्रमोद और परमानन्द बाहर भाकर)
 प्रमो० पर०—चलो देवि ! गाड़ी तय्यार है !

टेब्ला ।

—:~:—



मार्ग ।

(सुधारक के साथ २ भक्कड़ और फक्कड़ का आना)
 भ०—गुरु जी ! प्रणाम !
 फ०—पण्डित जी ! दण्डवत !
 भ०—देवराज ! पालागन !
 फ०—विप्रदेव ! नमस्कार !
 सु०—चुप रहो, मुँह में लगाम दो । होंठ सी लो । तुम
 लोग आदमी नहीं जानवर हो ।
 भ०—हैं, जानवर ?
 फ०—मनुष्य के रूप में खर !

भ०—देवता जी ! मैं आपका सेवक हूँ आपके चरणों का दास हूँ ।

फ०—सुधारक देव ! मैं आपका अनुचर हूँ, आपका किंकर दासानुदास हूँ ।

भ०—आप ब्राह्मण के अवतार हैं, सृष्टि के रचयिता हैं ।

फ०—मेरी दुनिया के अन्धकार को दूर कीजिये ।

भ०—मेरे उजड़े हुये घर को बसा दीजिये ।

सुधा०—उल्लू की दुम फाट्टा ! जब बिना भोग और अश्वत् के पत्थर का देवता भी नहीं पिघलता, तो यह दस हाथ का लम्बा चौड़ा मनुष्य, कैसे बर्फ की तरह पिघल जायेगा । बिना पुजापा पाये कैसे तुम्हारी सहायता को पग उठायेगा ।

भ०—तो महाराज ! यह लीजिये । (एकबी देना)

फ०—तो धर्मावतार ! यह स्वीकार कीजिये (एकबी देना)

सुधा०—हैं यह क्या ? एक आना ? बस अभी मेरे घर से निकल जाओ । मुझे अपना काला मुख न दिखाओ ।

भ०—हैं हैं दयानिधान ! इतना क्रोध !

फ०—हैं हैं कृपानिधान ! इतना रोष !

सुधा०—मूर्खों ! इसी कमाई पर व्याह करने आये हो ? एक आने पर लगन लिखवाने आये हो ?

भ०—पण्डित जी ! पाँच पैसे में तो आज कल गौदान होता है । यह तो चमकता हुआ सिलवर का टुकड़ा है ।

फ०—बिप्र जी ! चार पैसे हजार तो महामन्त्र का जाप होता है । यह तो बोलता हुआ सिका है ।

सुधा०—अरे जा जा, वह कोई उल्लू के पट्टे होंगे । जनेऊ के बदले ताँत पहनते होंगे ।



भ०—उल्टू के पट्टे हों या बैल की दुम, पर तिलक तो आप ही जैसा लगाते हैं ।

फ०—बैल की दुम हों या गदहे की भूल, पर चोटी और धोती तो आपही जैसी बाँधते हैं ।

सुधा०—तुम झूठे हो, लुच्चे हो, असत्यवादी हो । ब्राह्मण की जाति और पाँच पैसे हजार जाप ?

भ०—वह ब्राह्मण हों या महाब्राह्मण, पर लोग तो विप्रदेव कहते हैं ।

फ०—देवता जी ! आप इतना ही सुन कर सोड़े के बोटल के तरह उबल पड़े । अरे ब्राह्मण तो आज कल गली २ स्वांग भरते और लौंडा नचाते हैं । बनते हैं व्यास, पर नीच वृत्ति में डूबे जाते हैं ।

भ०—अजी, ४) रुपये मासिक पर रसोई बनाते हैं । मूँछ मुँड़ा कर मण्डलियों में भाव बताते हैं ।

सु०—पागलों ! वे ब्राह्मण नहीं, उस जन्म के चांडाल होंगे ।

फ०—हाँ, गुरु जी ! यह तो सत्य है, कि ब्राह्मण जाति बड़ी लोभी और पाखण्डी है ।

सुधा०—हैं, तू समस्त ब्राह्मणों की निन्दा करता है ।

भ०—नहीं गुरु जी ! उसी को कहता हूँ, जो ऐसा करता है ।

सुधा०—देख एक ब्राह्मण मैं भी तो हूँ, जो किसी के आगे हाथ तक नहीं फैलाता ।

फ०—पर यदि कोई जेब में डाल दे तो “ना” भी नहीं कहा जाता ।

सुधा०—अरे मूर्ख ! आये धन को कौन फँकता है ।

भ०—अच्छा गुरु जी ! ता मेरे लिये आज्ञा कीजिये ।



फ०—हाँ महाराज ! हमें कोई सुलभ मार्ग दिखा दीजिये ।

सुधा०—देख भाई ! केवल तुम हिलाने से काम न चलेगा जबानी जमा खर्च से व्याह न होगा । यदि वास्तव में तुम लाग व्याह करना चाहते हो तो सौ-सौ मुद्रा मेरे हवाले करो और फिर व्याह के बाज़ार में रूप के खरीदार बनो ।

भ०—सौ रुपये ! या मेरे बाप !

फ०—सौ मुद्रा ! हाय ! मुझे तो सूँघ गया साँप !

सुधा०—क्यों सुनते ही आ गया जाक ? अरे, अभी तो स्त्री के आभूषण अलग देने होंगे । विवाह मण्डप में लड़की के बाप को अलग भेंट चढ़ानी होगी ।

भ०—विप्र जी ! मर गये ।

फ०—पण्डित जी ! गुजर गये ।

सुधा०—मूर्खों ! मुझे जीने जी क्यों मारने हो ?

भ०—अरे तू ब्राह्मण है या जाति का क़स्साई !

फ०—तू विप्र है या जाति का नाई !

सुधा०—हैं, यह क्या ? यह क्या ?

भ०—करके अगुआनी लड़की के लिये, जो पेट अपना भरता है……………।

फ०—ठगहारी कर देश में जो कन्या-विक्रय करता है ।

भ०—ढोंग दिखा कर लग्न पत्र का दुनिया को जो ठगता है ।

फ०—विप्र नहीं, वह पातक है, कर्म अधम का करता है ।

सु०—ठहर तो शैतान ! यह क्या कहता है ?

(मारने को दौड़ाना, दोनों का भाग जाना)





विधवा आश्रम

(हिन्दू विधवाओं के साथ विमला का चर्खा चलाते दिखाई देना)

सब—

गाना—

इसी चरखे से मै-सीनों को चरखा करके छोड़ेंगे ।
हम इससे देश में दौलत की वर्षा करके छोड़ेंगे ॥
न होगी हैट नेकटाई न होंगे बूट पतलून ।
हम इंगलिस कोट को फिरसे आंगरखा करके छोड़ेंगे ॥
आगर अब भी न चेतें हो पशुवल के सभी हमी ।
तुम्हारी सारी सर सब्जी को चरखा करके छोड़ेंगे ॥

१ विध०—अहा कैसा मनोहर संगीत है, जिसकी स्वर लहरी में डूब कर आत्मा पवित्र हो जाती है ।

२ विध०—बहन विमला ! जिस दिन से तुमने इस आश्रम को पवित्र किया है उसी दिन से यहाँ शान्ति का निवास है ।

३ विध०—सच कहो बहन ! तुम पृथ्वी की सुन्दरता हो या स्वर्ग की देवी !

(एक वृद्धा का हाथ में पत्र और अखबार लिये प्रवेश)

वृद्धा—मुझ से पूछो, मैं बताता हूँ । जिसे तुम सब नारी समझ रही हो, वह पिशाचिनी है एक कुलटा वेश्या है ।

१ विध०—कुलटा ? कौन, यह विमला !

वृद्धा—हाँ हाँ यही विमला ! तो अगर मेरा विश्वास न हो तो इस अखबार को पढ़ लो !

२ विधवा—क्या लिखा है माता, ज़रा फिर से पढ़ कर हम लोगों को सुनाओ।

वृद्धा—सुनो:—

“लीडरों की लीला”

“विश्वास सूत्र से पता चला है कि समाज सुधारक भाई परमानन्द और प्रमाद बाबू ने अपने विधवाश्रम में बिमला नाम की एक वेश्या को अध्यापिका नियुक्त किया है। जो कि चौक की मशहूर तवायफ कंचनी की नौची रह चुकी हैं। मैं नहीं समझता कि ऐसा क्यों किया गया है। लीडरों की लीला वही जानें।”

१ विधवा—क्या यह सच्ची खबर है ?

वृद्धा—कहीं अखबार में भी झूठ छप सकता है। भाई, मैं तो आजही इस आश्रम को छोड़ दूंगी।

२ विधवा—यह क्यों ?

वृद्धा—इस लिये कि मेरे भाई ने मुझे पत्र में लिखा है। कि वेश्या के साथ रहने से तुम्हारी बदनामी होगी। धर्म कर्म की हानि होगी। अभी चली आओ।

सब—ठीक है।

१ विधवा—चलो बहन ! हम लोगों का भी ऐसे स्थान में रहना अच्छा नहीं।

सब—हाँ हाँ अभी चलो। (सब बढ़ती हैं बिमला रोककर)

बिमला—ठहरो बहनों, ठहरो ! तुम लोग मेरे लिये न जाओ, मैं आपही यहाँ से चली जाती हूँ।

तुम्हारी दृष्टि में मैं पाप की सिग मौर सही।

जहाँ खाये हैं लाखों तीर वहाँ एक और सही ॥

वृद्धा—चल पापिनी ! बातें न बना । धन के लिये धर्म को बेचने वाली वेश्या ! अब मुझ से अपना जाल न फैला ।

विमला—बहन !

वृद्धा—बस रास्ते से हट जा ! (सबका जाना)

विमला—ओह ! इतनी घृणा ! इतना तिरस्कार ! किस लिये ? इस लिये कि मैं समाज का इतना अत्याचार सहन करने पर भी अभी तक हिन्दू क्यों बनी हुई हूँ ? ओ ! धर्म की आड़ में न्याय और सत्य का गला घोटने वाले पाखण्डी समाज ! ठहर, अब मुझे भी अपने निर्दय शस्त्र से बदला लेना पड़ा । मैं भी तेरी जाति को और धर्म को पैरों से मसल कर दिखा दूँगी । आह ! कहाँ जाऊँ, किसका आश्रय लूँ ? क्या मुस्लीम समाज ! (सोचती है, सीन ट्रान्सफर होता है)

**मुसल्मान, मुल्ला और भिस्ती एक साथ
खाते नज़र आते हैं ।**

आती हूँ आती हूँ । मुस्लिम भाइयो ! तुमने यदि दुनिया से ठुकराई हुई आत्माओं को शान्ति देने के लिये अपना दरवाज़ा खोल रखा है । तो मैं तुम्हारे दीन में आती हूँ ।

तुम्हारे धर्म में छोटे बड़े का ख्याल नहीं ।

दीन दारों का दीन है किसी का माल नहीं ॥

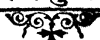
जुदा खुदा के यहाँ शाह औ कंगाल नहीं ।

करते नफ़रत से किसी को पामाल नहीं ॥

फर्के इज्जत नहीं मजहब में जुदा रखते हैं ।

एक दिल एक जवाँ एक खुदा रखते हैं ॥

(बढ़ती है, फिर सीन ट्रान्सफर होता है ।)



क्रॉस पर खिष्ट दिखाई देते हैं ।

तुम कौन ? परमात्मा के पुत्र... प्रभु ईसु ! क्या सच्ची शान्ति के लिये तुम बुलाते हो ? नहीं, नहीं, अभी मैं शान्ति नहीं चाहती । चाहती हूँ अपने मान के लुटेरों, हिन्दू समाज से बदला ! (सोंच कर) क्या कहा ? अत्याचार का बदला उपकार से चुकाऊँ ! अपने लिये शान्ति की खोज करूँ ! अच्छा वही करूँगी, आपकी आज्ञा स्वीकार है ।

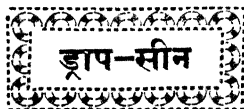
(फिर आगे बढ़ती है, सीन ट्रान्सफर)

ओ३म् रूप में विष्णु दर्शन ।

हैं ! यह कौन ? साक्षात् विष्णु भगवान् ! क्या कहते हो, (सोंच कर) जहाँ हूँ वहीं ठहरूँ ! मजहब बदलना परमात्मा की मर्जी के खिलाफ है ? ठीक कहते हो, पितामह ! आपके आदेशानुसार ही मैं चलूँगी ।

आकाश बाणी ।

जहाँ पर हो वही ठहरो उठाओ पैर मन अपने ।
पड़ो भ्रम में न देखो रौं के घर चैन के सपने ॥
न तुम जाओ न आयें मौलवी माला यहाँ जपने ।
रहो तुम गह पर अपने रहें वह गह पर अपने ॥
सभी हैं ठीक रास्ते पर न कोई दोन कच्चा है ।
सभी भगड़े हैं भूटे जगत् पिता का नाम सच्चा है ॥
(विमला बैठ कर विष्णु को प्रणाम करती है)





(सरला की सहेलियों का उसे छेड़ते दिखाई देना)

गाना ।

रंगीली रसीली शमीली, प्यारी है अलबेली ।

नृकीली-छवीली-अलवेली, प्यारी है अलवेली ॥

सरला-- जावो जी जात्रो, मोहे ना बनात्रो ।

सहेली-- प्यारी, लटक मटक क्या चाल ढाल है मतवारी ।

सरला— मोहे ना वनावो सखी, मत शर्माओ सखी ॥ जाओ०—

१ सहेली—क्यों बहिन ! क्या अब भी हृदय अशान्त है ?

२ सहेली—प्रीतम मिलन की घड़ी समोप है, तौ भी मुख मलहान है ?

३ सहेली—एक मिनट की जुदाई भी असहनीय है ?

१ सहेली—ज्यों नहीं, प्रीति की रीति श्रकथनीय है।

२ सहेली—देखो बहन ! प्रीतम के प्रेम में हम गरीबों को न भूल जाना ।

३ सहेली—अपने प्रेम-विरह में हमें न रुलाना ।

४ सहेली—यदि स्वामी को छोड़कर न आ सकना तो पत्र जरूर पठाना ।



सरला—देखो, यदि तुम लोग मुझे अधिक सताओगी तो मैं चली जाऊँगी ।

१ सहेली—अच्छा अच्छा रुठो नहीं, लो हम सबों ने अपने अपने होंठ सी लिये ।

गाना—

प्यारी कैसी बनी है दूल्हनियां ॥ प्यारी०—

चूंदर की सुन्दर है सारी ।

मुख में पान होठ में लाली ॥

अवरु कटार, नैनों का वार ।

घायल कर है मोहनियां ॥ प्यारी०—

(गाते २ सबका जाना)

(पुरोहित स्वार्थेचद और लोभीदास का निमंला के साथ प्रवेश)

स्वार्थ०—देखा, मैं एकरार किये हुये स एक कोड़ा कदापि कम न लूँगा ।

निमंला—पुरोहित जी ! दया कीजिये, मेरे जुट हुये हाथों पर, एक अचला अनाथ पर, एक विधवा के आसुओं पर दया कीजिये ।

स्वार्थ०—दया जितनी हो सकती थी, पहले ही कर चुका । अब आपके बालने की जगह नहीं है ।

नीवू को थोड़ा निचोड़ोगे तो रस आयेगा ।

और मसलोगे अगर ज्यादा तो कस आयेगा ॥

धर्म के काम में कंजूसियन से बाज़ आओ ।

कहा ज़राँ से जो देने को उसे ले आओ ॥

निमंला—विप्र देव ! क्षमा करेंगे । उतने रुपयों का तो इस समय कोई भी इन्तजाम नहीं हो सकता ।



स्वार्थ०—तो फिर याद रखो, कि यह बिवाह भी नहीं हो सकता । (प्रमोद का, परमानन्द के साथ प्रवेश)

प्रमोद—क्यों नहीं हो सकता ? क्या इस लिये कि तुम्हें मुँह माँगी रकम नहीं मिलती है । दखो देखो, ये संसार और हिन्दू समाज के अदूरदर्शी मनुष्यों ! यदि आँखें रखते हो तो देखो, कि तुम्हारे पुरोहित पैसों के लिये कहाँ तक अन्याचार करने को तय्यार हैं ।

लोभी०—बाबू साहब ! आप किसकी शान में यह शब्द कह रहे हैं ।

प्रमोद—तुम जैसे विवाह के दलालों के, जिनका काम है पैसों के लिये बालिकाओं को बूढ़ों के गले बँधवाना । भारत की भावी संतानों का कम उम्र में विवाह कराकर, उन्हें रोग और शोक का शिकार बनाना । धन न मिलने पर उचित सम्बन्ध में बाधा पहुँचाना और धन पाकर स्वर्ग-गृह को नरक बनाना:—

है नहीं दिल में दया कुछ भी न जिनके वास्ते ।

पाप से पीछे नहीं हटते हो धन के वास्ते ॥

धर्म के नेता बने हो, हत्या करो मत धर्म की ।

बाद मुर्दन वर्ना तरसेगे कफन के वास्ते ॥

लोभी०—(स्वगत) अररर अब तो मामला बिगड़ चला ।
आई रकम भी हाथ से जाया चाहती है ।

स्वार्थ०—प्रमोद जी ! ऐसी बातें न करो, हम ब्राह्मणों को आँखें न दिखाओ ।

हैं विधर्मी थोड़े से हिन्दू तुम्हारे साथ में ।

और हैं सब हिन्दू के हिन्दू हमारे हाथ में ॥



मुझ से लड़कर तुम फतह दुनिया में पा सकते नहीं ।

बच्चे हो मेरे सामने सर उठा सकते नहीं ॥

परमा०—ओ पेट के लिये, धर्म को अधर्म के आगे भेंट
चढ़ाने वालों, पैसों के लिये बर-कन्या के विवाह में बाधा डालने
वाले पंडितों ! इस मिथ्या अभिमान को भूल जाओ ।

स्वार्थ०—तुम मुझ पर तोहमत लगा रहे हो ।

परमा०—तो क्या तुम पैसों के लिये नहीं लड़ रहे थे ?

स्वार्थ०—हरगिज़ नहीं..... ।

लोभी०—कभी नहीं ! भला पुरोहित जी पैसों के लिये
विवाह में बाधा देंगे । कभी नहीं, राम राम..... ।

प्रमोद—फिर भगड़ा किस बात का था ?

स्वार्थ०—श्रीमान् के आबरू की ।

प्रमोद—वह क्या ?

स्वार्थ०—यही, कि यह लड़की, जिससे बिनाद का विवाह
होने वाला है एक रंडी की बहन है ।

(राय साहब का गोबर्द्धन दास के साथ प्रवेश)

राय सा०—रण्डी की बहन ?

स्वार्थ०—हाँ रण्डी की बहन ! विमला की बहन सरला !!

रा०सा०—बस, विवाह रोकदो, बारात लौटा लेचलो ! ऐसे
दुषित घर में जहाँ मर्यादा की हत्या हो विवाह नहीं हो सकता है ।

गोबर्द्धन—पुरोहित जी ! विवाह तो आप ही लोगों ने तय
किया था और यह भी आपही का कहना था, कि लड़की
सुन्दर और उत्तम घराने की है ।

स्वार्थ०—श्रीमान् ठीक कह रहे हैं । पर उस वक्त उस में
कोई ऐब नहीं मालूम हुआ था ।

परमा०—क्योंकि तुम्हारी आखें चाँदी के चमकते हुये सिकों से बंद थीं। कानों में रुपयों की खनखनाहट के सामने दूसरी आवाज़ नहीं पहुँचती थी। ज़बाँ पर स्वार्थ की मुहर लगी हुई थी। और जब कि रुपयों की थैली में बढ़ा नज़र आया, तो आपको उस लड़की की आबरू में बढ़ा दिखाई देने लगा ? डरो, डरो, पण्डित जी ! दुनिया से नहीं, तो उस परमात्मा से डरो। अर्थ के लिये अनर्थ न करो।

स्वार्थ०—तो क्या तुम यह कहना चाहते हो, कि उसकी बहन रण्डी नहीं है ?

परमा०—विमला है, सरला रण्डी नहीं है।

रा० सा०—मगर रण्डी की बहन तो है। फिर उसके रण्डी कहलाने में क्या सन्देह है ? बस, मैं नीच घरानों का पानी नहीं ग्रहण कर सकता।

आने न दूँगा फर्क जरा आन बान में।
धब्बा न लगाऊँगा कभी खान्दान में॥
दुनिया कहेगी शादी की रण्डी की बहन से।
ताला लगा सकते नहीं जग की ज़बान में॥
ऐसे विवाह से कली दिल की न खिलेगी।
बेटे के लिये और क्या दूल्हन न मिलेगी॥

लोभीदास ! जाव, महफिल उठा दो। विनोद को यहाँ बुला लाओ और सफर की तैयारी करो।

निर्मला०—नहीं, नहीं, ऐसा न करो। मुझ पर नहीं तो एक अबोध अबला के जीवन पर दया करो। ऐ पूँजीपति ! मेरे लाज-जहाज को समाज सागर में डूबने से बचा लो ! एक

भोली भाली कुँआरी कन्या पर गिरती हुई अत्याचार की तलवार को रोक लो ।

गोब०—किन्तु, जब तुम सभी ने मिल कर राय साहब की आँखों में धूल भोंक कर अपना काम बनाना चाहा, एक श्रीमान् की इज्जत को डुबाना चाहा, तो तुम पर दया करने की कोई ज़रूरत नहीं है ।

प्रमोद—नहीं, दया की सबको ज़रूरत है ।

रा० सा०—क्या एक पतित पर ?

प्रमोद—हाँ !

रा० सा०—किस लिये ?

प्रमोद—इसलिये कि अगर समाज की नज़रों में कोई अपराध है तो वह सरला की बहन का है । सरला का नहीं । फिर एक बेकसूर को कसूरवार ठहराना, काग के अपराध में हंस को दण्डित बनाना, यह कहाँ का न्याय है ?

रा० सा०—बस चुप रहो । तुम लडके हो, तुम्हें हमारे बराबर बोलने का अधिकार नहीं है ।

परमा०—सत्य है । क्योंकि समाज की किताब में न्याय अन्याय का पाठ नहीं लिखा है ।

विनोद—(आकर) कहिये, क्या आज्ञा है !

रा० सा०—बेटा ! इस मौर को उतार कर फेंक दो और इस जलील और आबारा घर की आँच से भागो ।

निर्मला—(राजा साहब के पैरों पर गिर कर) नहीं नहीं, मुझे अपमान के पत्थर से न मारो ।

रा० सा०—बस, दूर रहो, मुझे स्पर्श न करो ।

(विनोद का हाथ पकड़ कर ले जाना)



स्वार्थ०—देखते हो, इस तरह होता है अपना काम ।

प्रमोद०—शोक ! जो लोग धन के मद में चूर हो कर कन्या को, ब्राह्मण और नाई के विश्वास पर बिवाह-बन्धन में बाँधना चाहते हैं, उनका यही होता है अंजाम !

निर्मला—आह ईश्वर ! यह कैसा अनर्थ, कैसा घातक बाण... ..?

(निर्मला का मुर्च्छित होना, परमानन्द का सम्हालना)

टेबला ।



मकान ।

(चञ्चला का गाते हुये आना)

चंचला—

गाना ।

मेरी फली फूली जवानी की कलियाँ ।
मेरी अधखिली है यौवन की अलियाँ ॥
एक बन्दर आवे तो ठेढ़ी टोपी देकर ।
एक मुल्लन्दर आवे तो घघरी चोली पहनकर ॥
कैसी बनी नटखट की है यह दुनिया ॥ मेरी०—



वन के हैं मानुष यह है नहीं मनुषत्व इनमें ।
 तन के हैं आलस यह, है नहीं पुरुषत्व इनमें ॥
 धन के हैं लोभी यह, है नहीं प्रभुत्व इनमें ।
 मन के हैं चोभी यह, है नहीं कुछ स्वत्व इनमें ॥
 देख भाल छान कर पीऊँगी पनियाँ ॥ मेरी०—

पानो पीना छान कर, पति करना जान कर ! जब मनुष्य, छदाम की हाँडी ठोक बजा कर खरीदता है तो वह औरत, जिसका भविष्य मर्दों की दया पर निर्भर है, कैसे बिना समझे वूँके आग में कूद पड़े ? गोरे चमड़े और साफ कपड़े पर अपना जीव समर्पण कर दे । जब पुराने जमाने में औरतें स्वयम्बर रचा कर पति अपनाती थीं तो मैं क्यों न परख कर शादी रचाऊँ ? क्यों न अपनी मोटर किसी अच्छे ड्राइवर के हाथ से चलवाऊँ ?

सुधा०—(आकर) जरूर ! नहीं तो आज कल के ड्राइवर अच्छी मोटर देखते ही पहले उसे खूब दौड़ाते हैं, फिर उसका पुर्जा बिगाड़ कर रफूचकर हो जाते हैं ।

चंचला—पिता जी ! आपका कहना बिल्कुल ठीक है । अब के ज़माने में आदमी का स्वभाव बड़ा नीच होता है !

सुधा०—बिल्कुल सड़ा हुआ आम ! मिठास के बदले खटास । मुँह पर चिकनी चुपड़ी बात ! मन में कपट का घात !!

चंचला—तो बासना के बाजार में रूप का भाव ज़्यादा है या गुण का ?

सुधा०—भाव तो दोनों महँगा है । किसी के यहाँ मोटिया धोती है तो किसी के यहाँ सारी के बदले लहँगा ।



चंचला—अर्थात् ?

सुधा०—अर्थात् एक पुलिस का कर्मचारी है, तो दूसरा खहरधारी है। एक को कोट पतलून प्यारी है, तो दूसरे को खहर की बीमारी है।

चंचला—तो विवाह के बाज़ार में दोनों अयोग्य हैं।

सुधा०—वेशक ! सौदा दोनों नहीं करने योग्य हैं।

चंचला—किन्तु हम स्त्रियों को तो मनुष्य नहीं, उसका हृदय चाहिये।

सुधा०—पर हृदय भी जभी मचलता है, जब जेब में पैसा रहता है।

चंचला—तो कदाचित् वे कंगाल हैं।

सुधा०—बिल्कुल चांडाल हैं। जो आदमी एक आने पर लगन लिखवाये, एक पैसे में गौदान छुड़वाये, वह भी स्वर्ग जाना चाहे ?

चंचला—तो यह न कहिये कि कंजूस हैं।

सुधा०—बिल्कुल मक्खीचूस हैं।

चंचला—दान दक्षिणा में सूम हैं।

सुधा०—कुत्ते की दुम हैं।

चंचला—तो उनकी दवा बतलाइये ! उन मुर्दों को कहीं और दफनाइये।

सुधा०—दवा तो यही है कि उन्हें बैरंग वापिस लौटाओ, कुंआरी रहो, पर निर्धन के साथ ब्याह न रचाओ।

चंचला—परन्तु पिता जो ! जिसे कन्यादान देना—उसी से धन लेना ? जिसका पाँच पूजना, उसी का रुपया ठगना ?



सुधा०—पागल ! ब्राह्मणों के लिये सब कुछ सुफल है। यह तो हमारी जाति में परम्परा से चली आई है।

चंचला—परन्तु कन्या-विक्रय तो बड़ी नीचताई है।

सुधा०—अरे यही तो ब्राह्मणों में श्रेष्ठता है। कन्या क्या कोई जमीन में पड़ी हुई मिली हैं जो मुफ्त दूसरों के हाथ सौंप दूँ ? अपने खून की कमाई, क्यों मिट्टी की तरह फेंक दूँ।

चंचला—तो कन्या को बेचना चाहिये ?

सुधा०—अवश्य। जो चीज परीश्रम से बनी है, उसका मूल्य रखना चाहिये। जब कुम्हार मिट्टी के बनाये हुये खिलौने का दाम लेता है तो हम सजीव खिलौने को मुफ्त क्यों दें।

चंचला—जब तो यह प्रथा बड़ी निन्दनीय है। इसी से आजकल ब्राह्मणों की दशा शोचनीय है।

सुधा०—तो तुम्हें किसी दूसरे के घर जन्म लेना था। मनुष्य के बदले कुत्ता या बिल्ली होना था।

चंचला—क्यों ?

सुधा०—क्योंकि तू पूर्वजों की निन्दा करती है। जिस धर्म में पैदा हुई, पली, उसी पर दोषारोपण करती है।

चंचला—मैं नहीं, यह तो दुनिया कहती है, कि ब्राह्मण जाति यह अधम कार्य करती है।

सुधा०—बस, बस, अपनी टें टें बन्द कर और यदि मेरी अनुपस्थिति में वह आये तो उन्हें बैरंग वापिस कर।

चंचला—जैसी आपकी आज्ञा। आप पिता हैं—बेटी पर आपका हर तरह अख्तियार है।

(सुधारक का जाना, झकड़ और फकड़ का आना)

भ०—दिल की दिलजान आओ, हैंसती हुई प्राण आओ, आये हैं हम सब द्वार पर ।

फ०—मुख की मुस्कान आओ, सुख की निधान आओ, आयें अधिति, सत्कार कर ।

भ०—दिल की दुलारी आओ, ब्राह्मण-कुमारी आओ, मन में मेरे बिश्राम कर ।

फ०—मन की फुलवारी आओ, घर की पियारी आओ, बैठे हैं दिल को थाम कर ।

भ०—सुन्दर सयानी आओ, मेरी राज रानी आओ, नैना अभिराम, धूम धाम कर ।

फ०—कबिता कहानी आओ, मेरी चाय-पानी आओ, रोगी को अपने अराम कर ।

(चञ्चला का भाना)

चञ्चला—हैं, तुम लोग कौन हो ?

भ०—आदमी !

फ०—मनुष्य !

चं०—यह तो मैं भी देखती हूँ कि बिश्वबाटिका के वृक्ष में दो फूल खिले हैं, पर उसमें सुगन्ध नहीं है । दरवाजे पर दो मनुष्य आये हैं, पर उनमें मनुष्यत्व का गन्ध नहीं है ।

भ०—हैं, क्या हम मुरझाये हुये फूल हैं ।

फ०—तो क्या हम नीम हैं, बबूल हैं ।

चं०—नीम भी दवा के काम आती है । मुरझाया हुआ फूल भी अपना गुण दिखाता है ।

भ०—तो हम उससे भी गुज़र गये ।

फ०—एक दम खञ्जर हो गये ।

चं०—खञ्जर का जीवन भी सुफल है ।

भ०—तो हम उससे भी खल हैं ।

फ०—एक दम खटमल हैं ।

च०—अवश्य ! जिस मनुष्य में मनुष्यत्व का गन्ध नहीं, पुरुषत्व का सुगन्ध नहीं, ममत्व का मद नहीं, बन्धुत्व का नद नहीं, वह क्या मनुष्य कहा जा सकता है ?

भ०—फिर, फिर ?

फ०—तो, तो ?

च०—बिल्कुल हैवान !

भ०—हाय ! भगवान !!

फ०—या रहमान !

भ०—किन्तु, रूप के बाजार में ज़रा मेरी मूँछें तो देखो ।

फ०—सुन्दरता के क्षेत्र में मेरा चेहरा तो परखो ।

च०—यह मूँछ नहीं, बकरी की पूंछ है—यह चेहरा नहीं हवा में उड़ता हुआ फरहरा है ।

भ०—मेरी टेढ़ी टोपी पर तो नज़र डालो ।

फ०—मेरे कोट पैंट को तो पहचानो ।

च०—यह ऊपर से सुफेद और भीतर से काली है । इस कोट पैंट में रहने वाला, आदमी नहीं मवाली है । बस चले जाओ, ज्यादा अपनी तारीफ के काग़जी नाव न चलाओ ।

भ०—आखिर हम में क्या कमी है ?

फ०—क्यों हम पर बेरहमी है ?

च०—वही, जो दुनिया में पैदा होना आदमी के लिये सकाम है । जो संसार का कर्तव्य ओर मनुष्यत्व का नाम है ।

भ०—समझा, समझा ! खनखनाता हुआ पैसा !

फ०—जाना, जाना ! चमकता हुआ सिका !

भ०—तो उसके लिये क्या चिंता है। हम काशी के प्रसिद्ध व्योपारी हैं।

फ०—पैसे के लिये क्या रोना है, हम तो सरकारी कर्मचारी हैं।

च०—चुप रहो, ज़्यादा शेखी न मारो। सड़क के भाड़ होकर शान न बघारो।

भ०—तो फिर किस बात का टोटा है ?

फ०—किस चीज़ में बन्दा छोटा है ?

च०—वही, जिस जिन्दगी से दुनिया में आदमी मर्द कहता है।

भ०—तो हम नामर्द हैं।

फ०—बिल्कुल सर्द हैं ?

च०—ज़रूर। जो गुलामी से पेट भरता है, ज़ालिमों के पैसों से अपनी जिन्दगी बशर करता है, वह कभी नहीं मर्द कहा जा सकता है।

फ०—हाय रे गुलामी ! तेरे पैसों में यह नामर्दी की बदनामी ! होंठ के पास पानो आकर ज़हर बन गया। थू है ऐसे जीवन को, जो गुलामी में बशर हुआ। मर्द से नामर्द बना, धर्म की लुटिया डूब गई। ऐसी खाई मुँह की कि जिंदगी ऊब गई। मर्दानगी के मैदान में दौड़ा जो घोड़ा गुलामी का। लानतो फिटकार का मैं खा गया कोड़ा नाकामी का ! (जाना)

भ०—परन्तु सुन्दरी ! यह सेवक तो व्यापार की रोटी खाता है। अपनी कूँवत बाजू से कमाता है।

चं०—वह भी व्यर्थ है ! अपने भाइयों का गला काट कर एक के चार लेते हो । कहने को हो भाई, पर ज़हर अपने हाथ देते हो । अगर बनते मर्द हो तो करो कुछ देश का उपकार ! सूर्य बन जगत में चमको देश कर जय जयकार !!

भ०—तुझे आँख के पट धन्य धन्य तुम हो देवी अवनार !
भूखे नंगों की सेवा कर-करूँगा सत्य का मैं व्योपार !!
कपट भूठ को त्याग कर मैं करूँगा जीवन का उद्धार !
लज्जा का अपराध को मेरे मैं सेवक पे सुन्दर-नार !!

चं०—प्रसन्न हुई मैं प्रीतम तुम पर दुनिया नहीं दुरंगी हो ।
पति वही मैं पत्नी उसकी जो काया देश में रंगी हो !!

भ०—प्यारी ! तो अब इस निखट्टू का राह पर लाओ ।
शीघ्र विवाह रचा कर आदमी बनाओ ।

चं०—अच्छा देखो, मेरे पिता एक लोभी जीव हैं । बिना द्रव्य के स्वर्ग का भी नरक समझते हैं । देश में विपत्ति हो या अकाल, पर वह कन्या-विक्रय से अपना पेट भरते हैं ।

भ०—हैं कीच में कमल !

चं०—प्यारे ! अश्चर्य न करो । संसार लुटेरों और ठगों के पाप से पीड़ित हो रहा है । यह हिंदू-समाज आडम्बरों के परदों में छिपा हुआ है ।

भ०—तो फिर कितना द्रव्य ले आऊँ ?

चं०—द्रव्य लाने की ज़रूरत नहीं है । मेरे साथ आओ, और चुपके से पिछले द्वार से निकल चलें ।

(दोनों का जाना—सुधारक का आना)

सु०—अपनी खेती बेटी, कन्या, भर दें घर में पैसा ।

जोता बोया फसिल हुई, तब लेने में क्यों वैसा ॥

बेटी ! अरी ओ मेरी कमाई की रोटी !! हैं, जवाब नदारद !
क्या सो गई ? या क्यूँ पर पानी भरने गई ?

(घर के भीतर जाकर रोता हुआ आता है)

गाना ।

हाय ! हाय !! घर से गई निकल ॥ हाय०—
किया कराया चौपट हो गया—
लूट गई सब मेरी फसल ॥ हाय०—
सोचा था सौ-सौ मुद्रा इधर-उधर से आयेगा ।
पहिले तिलक फिर मंडप में चाँदी घर हो जायेगा ॥
नहिँ चाँदी मिला, नहिँ बेटी रही—
कैसा हुआ यह रमल बिमल ॥ हाय०—
कन्या-विक्रय कर जीवन मैं काला अपना कर दिया ।
दुनिया में बदनाम हुआ औ दोनों लोक बिगड़ गया ॥
हुई चारो ओर से मिट्टी ख्वारी—
पान किया दुष्कर्म-गरल ॥ हाय०—

(भफसोस करते हुये जाना)





कंचनी का मकान ।

कंचनी—दुनिया के आलिम, पण्डित, उपदेशक और किताबों के लेखक, एक मुख से इस मकान की शिकायत करने हैं। मगर मैं यह पूछती हूँ, अगर संसार में रण्डी के मकान न होते तो इस गिरे हुये कौम और समाज की तलवारों के घायल लाखों अबलाओं को, जिनका मान, धन और धर्म समाज ने जबरदस्ती छीन लिया है, उन्हें कहाँ आश्रय मिल सकता था ?

विमला—(आकर) यमराज की गोद में !

कंचनी—देवि ! मैं पहले नहीं समझती थी, कि संसार इतना नीच है ! आज समझी कि यह वेश्यालय कहलाने वाला रण्डी का मकान नहीं, बल्कि समाज से सतायी हुई अबलाओं के लिये एक अनाथालय है। विमला ! अब तुम्हें मालूम हुआ होगा कि मैं वेश्या क्यों हुई ?

किया मज़बूर मुझको कौम ने सतपन गँवाने को ।
हुई तैयार जब जाती मुझे रण्डी बनाने को ॥
न रहने को कोई घर था, न था कुछ पास खाने को ।
न था तैयार कोई पास में अपने बिठाने को ॥
धर्म आडम्बर दिखा कर कौम वाले तन गये ।
जाति के डर से सभी अपने बेगाने बन गये ॥



विमला—फिर भी लोग जबान से तो रण्डियों को बुरा कहते हैं और उन्हीं के पैरों में गिर कर अपने मान, सम्मान और धन, धाम की भेंट चढ़ाते हैं ।

कंचनी—इसी लिये हम लोग भी उन स्वार्थी कामियों पर दया नहीं करतीं, बल्कि उनका सर्वनाश कर उन्हें राह का भिखारी बनाने के लिये तैयार रहती हैं ।

विमला—तो क्या दुबारा तुम मुझे इसी लिये यहाँ लाई हो, कि मैं भी हिन्दू जाति से बदला लेने में तुम्हारा साथ दूँ ? नारी धर्म का नाश कर इस समाज के मुख में कालिख लगा दूँ ?

कंचनी—नहीं, मेरे ऐसे नीच विचार नहीं हैं ।

विमला—तो मुझे मेरे भाग्य के भरोसे संसार में ठोंकर खाने के लिये अकेली छोड़ दो । मैं खूब जानती हूँ, कि हिन्दू-समाज, अबलाओं पर अत्याचार करने के लिये तैयार है । उसने मुझे प्रमोद के पवित्र आश्रम में भी नहीं रहने दिया । अबलाओं द्वारा मेरे दिल पर ठोकर मार कर मुझे दूर किया । किन्तु इस पर भी मैं हिन्दू जाति को न लजाऊँगी । भूख और प्यास से तड़प तड़प कर मर जाऊँगी, पर नारी धर्म को न गवाऊँगी ।

समुद्र अपनी सीमा भले त्याग देवे ऋषी भी हों पापी करें गर बुराई ।
मही पर उतर आयें गर चांद सूरज, न तारे आकाश में देवे दिखाई ॥
कलाधर की किरणों से बर्षेगी अग्नी, दिवाकर से सुधा की धारा बहेगी ।
न उसदिन भी आंचलमें धब्बा लगेगा, कि जब ईश सत्ता न बाक़ी रहेगी ॥

कंचनी—शाबास ! विमला, शाबास !! मैं तुम्हारी इन बातों से बहुत ही खुश हूँ । निःसंदेह तुम्हारी जैसी सती नारियों से ही आज इतने नीचे गिरने पर भी इस हिन्दू-जाति का मुख उज्ज्वल है । न घबड़ाओ, विमले ! न घबड़ाओ । मैंने जिस ख्याल से पहले तुम्हारा साथ दिया था, इस बार भी उसी विचार से तुम्हें साथ ले आई हूँ ।

मैं अपनी युक्ति से दिल की कली तेरे खिलाऊँगी ।

न घबड़ाओ कि स्वामी से तेरे तुझको मिलाऊँगी ॥

राम चरन—(आकर) बाई जी ! विनोद बाबू ऊपर आना चाहते हैं ।

कंचनी—उन्हें खातिर से ले आओ । विमला ! हाँशियार हो जाओ ।

विमला—किस लिये ?

कंचनी—प्रेम को हृदय के परदे में छिपा कर, निर्दयता का नाट्य करने के लिये । विमला ! सती नारी का सच्चा स्नेह छोड़ कर, लोग हमारे यहाँ मान धन और धर्म गँवाने के लिये क्यों आते हैं जानती हो ?

विमला—क्यों आते हैं ?

कंचनी—बनावटी रूप और कपट प्रेम के परदे में शैतानियत का नाच देखने के लिये । और आज उसी जाल से तुम्हें इस पक्षी को फँसाना होगा ।

विमला—वह क्या ?

कंचनी—तुम अपने उसी हठ पर अड़ी रहना । बाद में जो करना है, मैं करूँगी ।



विमला—बहुत अच्छा ।

विनोद—(आकर) बाई जी ! बदंगी !

कंचनी—बदंगी ! कहिये किधर से रास्ता भूल गये ।

विनोद—क्या बताऊँ बड़ी भँकट में फँस गया था, जिस वजह से इस ओर न आ सका ।

कंचनी—वह कौन सी भँकट थी, मैं भी तो सुनूँ ?

विनोद—उस रोज आपके मकान पर देख लेने से पिताजी की मेरे ऊपर कड़ी निगरानी रहती है ।

कंचनी—मैंने तो सुना था, कि आप का ब्याह था ।

विमला—(स्वगत) क्या ब्याह ?

विनोद—हाँ था तो जरूर पर नहीं हुआ, यह अच्छा ही हुआ । क्योंकि मेरी आखें अब विमला के सिवा और किसी को भी नहीं देख सकती ।

मेरी जीवन की कुन्जी मेहरबानी अब इनकी है ।

बँधा है जिसमें दिल वह जुल्फ गेसुये जंजीर इनकी है ॥

हृदय में प्यार इनका आँख में तस्वीर इनकी है ।

चुभी सीने के अन्दर अवरुये शमशीर इनकी है ॥

अब इनके ख्याल को मैं दिलसे अपने खो नहीं सकता ।

ये आँखें गैर को देखें अब ऐसा हो नहीं सकता ॥

विमला—बह गलत है ।

होती है निराली ही कुछ नीति लगावट की ।

रहने दो पास अपने यह बात बनावट की ॥

विनोद—परमात्मा गवाह है, मैं सच कहता हूँ ।



विमला—बस चुप रहो । परमात्मा की भूठी कसमें खाकर भूठ को सच की पौशाक न पहनाओ ।

कंचनी—बिनोद ! आप यह न समझें कि रंडियां कुछ नहीं समझती हैं । हमलोग सब जानती हैं, मगर फिर भी आप जैसों से अपना मनलब निकालने के लिये मूर्ख बन जाती हैं । यह, वो घर है जहाँ, टुकड़खोर और नीच भी आकर नवाब बन जाते हैं और बड़े बड़े धनी बेवकूफ बन कर कोठे से धक्के खाते हैं ।

‘जो आते हैं यहां बनते हैं सब औतार सतपन के ।

सफा रहते फपड़े पर सफा रहते नहीं मन के ॥

जबों पर प्रेम का है नाम दिलमें नफस की रुवाहिश ।

नहीं आशक हैं यह होने हैं डाकू हुस्न-यौवन के ॥

दगाबाज़ी से वह हमको दगाबाज़ी सिखाते हैं ।

वफा जिनमें नहीं है बेवफा हमको बताते हैं ॥

बिनोद—कंचनी बाई ! जो कुछ हो, मगर मैं तो विमला को सच्चे मन से प्यार करता हूँ ।

कंचनी—यदि ऐसा है तो उस दिन विवाह के प्रस्ताव पर इन्कार क्यों किया था ?

बिनोद—इसलिये, कि समाज का डर मुझे ऐसा करने से रोकता है ।

विमला—तो लौट जाओ और उसी समाज से जाकर प्रेम करो । जिसका अधिक प्रेम मजबूत है । शोक की बात है । कि समाज की एक स्त्री छिपकर सहस्रों पाप करने पर भी अपने पति का पल्ला पकड़ सकती है, मगर एक कुंवारी कन्या

जिसके नाम के आगे समाज ने जबरदस्ती रंडी का शब्द जोड़ दिया है, सतपन के लिये मर मिटने पर भी तुमसे भिक्षा नहीं पा सकती है। जब तुम और तुम्हारा निर्दय हिन्दू-समाज हमारे साथ वफ़ा नहीं करता तो हम से वफ़ा की उम्मीद न रखो।

विनोद—विमला.....!

विमला—मैं कुछ नहीं सुनना चाहती! बस या तो मुझे अपनी बनाने के लिये तैयार हो जाओ। या चुप चाप यहाँ से चले जाओ।

किसी की बात में पड़ धम अपना खो नहीं सकती।

जो मेरा हो नहीं सकता मैं उसकी हो नहीं सकती।

विनोद—मैं तुम्हारा हूँ और जब तक शरीर में प्राण रहेगा तुम्हारा रहूँगा।

कंचनी—समाज का ख़ौफ़ ?

विनोद—उसे विमला की प्रेमाग्नि ने जला डाला।

कंचनी—इसे अपनी अर्धाङ्गिनी बनाने के लिये तैयार हो ?

विनोद—दिलो जान से। धर्म और ईमान से।

कंचनी—मगर तुम्हारे पिता ?

विनोद—हाँ उन्हीं का ख़याल है। और इसलिये, कि सारी जायदाद उनकी है और उस पर उनका अधिकार है।

विमला—फिर ?

विनोद—कल उन्हें जलपान के समय किसी उपाय से संसार से बिदा कर दूँगा। अपने आनन्द के रास्ते में खटकने वाले कांटे को मौत के पैरों से कुचल दूँगा।

कंचनी—क्या बेटा होकर बाप को ज़हर दोगे ?

विनोद—यहाँ आने वाले को लिये ज़हर देना और खा लेना आसान बात है ।

घर में रण्डियों के लाख के घर खाक होते हैं ।
 यहाँ आ आ के लाखों पाक दिल नापाक होते हैं ॥
 जुआचोगी दगा औ खून है धर्म इस घर का ।
 हजारों रण्डियों के हेतु सीने चाक होते हैं ॥
 सभी यह जानते हैं फिर भी यहां आते हैं मरने को ।
 तुम्हारे हेतु जाते हैं पिता का खून करने को ॥
 (चला जाता है)

विमला—क्या खून ? ओह ! यह क्या ? रोको रोको, कंचनी बाई ! उन्हें इस हत्या से रोको । हैं सुनती नहीं हो, यह तुम क्या करा रही हो ।

कंचनी—वही जो क़ौम चाहती है ।

खुद रोते हैं यह परिणाम है हमको मलाने का ।
 नतीजा है यह निर्बल नारी को वेश्या बनाने को ॥
 तुम्हारा धर्म धन और मान पैरों से मसलती हूँ ।
 यह बदला है मेरा, संसार से मुझको छुड़ाने का ॥
 लगाते हैं घरों में आग फिर पानी को रोते हैं ।
 जगा कर साँप को खुद पैर फैला करके सोते हैं ॥

विमला—उपकारिणी ! यह क्या हो रहा है ?

कंचनी—चुप रहो, जो कहती हूँ उसे करो और जो करती हूँ उसे होने दो । आओ, मेरे साथ आओ ।

जोनि हो दुर्गंगी-दुनिया में अँधेरे पाख से ।

है दिखाना पाप फल अँधों को उनकी आँख से ॥

(विमला का हाथ धर कर ले जाती है)



राय मानिकचन्द जी का आनन्द-भवन ।

(कंचनी और विमला का राजा साहब के नौकर के साथ प्रवेश)

कंचनी—(नोट देकर) लो यह तुम्हारा इनाम हैं । खबरदार ! यह बात किसी को मालूम न होने पाये । हम लोग बगल की कोठरी में छिप जाती हैं ।

नौकर—आप बेफिक्र रहें । (जाता है)

कंचनी—बस, अब यहीं पर छिप कर यहाँ का तमाशा देखंगी और समय पर अपना काम बनाऊँगी ।

विमला—कोई आ रहा है ।

(दोनों का छिप जाना, राय साहब का गोबर्द्धन के साथ प्रवेश)

रा० सा०—नहीं, इसमें देर न होनी चाहिये, नहीं तो विनोद हाथ से बे हाथ हो जायगा ।

गोब०—घात तो ठीक है । मगर अपनी गरज पर दहेज की रकम.....

रा० सा०—ज़्यादा नहीं मिल सकती, यही न ?

गोब०—श्रीमान् का कहना ठीक है ।

रा० सा०—कोई परवाह नहीं । इस समय रुपये की तरफ नहीं, घर और लड़के की तरफ देखना है । जैसे हो शीघ्र उसकी शादी करनी चाहिये ।



गोब०—जरूर ! जरूर !!

(विनोद का प्रवेश)

विनोद—पिता जी ! प्रणाम !!

रा० सा०—आनन्द रहो ।

गोब०—मैं जा सकता हूँ ?

रा० सा०—हाँ जाओ और जितनी जल्दी हो सके इस काम को अंजाम दो ।

गोब०—बहुत खूब । (जाता है)

रा० सा०—विनोद ! नौकर को आवाज़ दो जल-पान ले आये ।

विनोद—मैं खुद लाता हूँ ।

काम क्या नौकर का है मैं आप तावेदार हूँ ।

पितृ सेवा के लिये हर वक्त ही तैयार हूँ ॥

रा० सा०—अहा ! कैसा सुशील लड़का है । मगर जवानी के जोश ने इसे भी रणड़ी के मकान तक पहुँचा ही दिया । अब इसके बिवाह में बिलम्ब करना बड़ा ही हानिकारक है ।
वर्ना:—

न रोके से रुकेगी बढ़ गई जब प्रेम की शक्ती ।

फँसा वेश्या के फन्दे में तो खो जायेगी यह भक्ती ॥

विनोद—(आकर स्वगत) बस, अब अपना काम बन गया । थोड़ी देर में इनका काम तमाम है और अपने लिये आराम है ।
(प्रगट) लाजिये, पिता जी ! जल पान तैयार है ।

रा० सा०—लो कुछ तुम भी लो ।

विनोद—पहले आप खा लें, फिर मैं भी प्रसाद पा लूँगा ।

रा० मा०—परमात्मा सबको ऐसा ही बेटा दे ।

(एक लड़कू उठा कर खाना चाहता है, बिमला सामने से आकर हाथ पकड़ लेती है)

बिमला—हरगिज़ नहीं । राय साहब ! इस मिठाई को भूल कर भी न खाइयेगा ।

रा० सा०—क्यों ? किस लिये ?

बिमला—इसलिये, कि एक वेश्या को खुश करने के लिये तुम्हें संसार से उठाने का सामान किया गया है । इस मिठाई में ज़हर मिला हुआ है ।

रा० सा०—इसका प्रमाण ?

बिमला—मैं हूँ, इधर देखो ।

रा० मा०—कौन ? बिमला !

बिमला—हाँ, जो आपके अत्याचारों से सती होते हुये भा वेश्या कहलाती है ।

विनोद—(स्वगत) आह ! मैंने धोखा खाया । (प्रगट) नीच ! वेश्या ! यह तू ने क्या किया ?

बिमला—समाज के आँखों पर जो परदा पड़ा था, उसे हटा दिया । मुझे नीच वेश्या बनाने वाले मुनहले साँप ! अपने गरेबाँ में सर भुका कर देना, फिर तुम्हें आप ही मालूम हो जायगा कि नीच कौन है ?

बना रक्खा है अन्धा आप को दिल की कदूर ने ।

मुझे वेश्या बनाया किसने ? तूने तेरी सूरत ने ॥

विनोद—मैंने वेश्या बनाया ?

बिमला—हाँ तुमने । जब सती होते हुये भी मैं संसार और समाज की नजरों में पवित्र थी, मेरी माता ने आँखों के

सीप से मोतियों के दाने निकाल कर दहेज में देने हुये मुझे-
तुम्हारे पैरों पर गिरा दिया था, तुम्हीं ने धन के लोभ में पितृ
भक्ति का ढोंग दिखा कर मुझे ठोकर मारा। उसका फल मुझे
क्या मिला ? वेश्या का नाम। आज वही तुम हो जो मेरे पैर
पर हज़ारों की भेंट चढ़ा कर मुझसे प्रेम की भिक्षा माँगते हों
और मुझ वेश्या को खुश करने के लिये पिता को ज़हर दे रहे
हो। बोलो, जवाब दो, नीच कौन ? मैं ? या समाज ?

विनोद—समाज ! प्रिये ! आज तू ने अपनी चतुराई से
समाज के आँखों पर पड़े हुये झूठे आडम्बर के परदे को उठा
कर सच्चा चित्र दिखा दिया। विमला ! मुझे माफ़ कर.....।

(परमानन्द के साथ प्रमोद का प्रवेश)

परमा०—और परमात्मा भी तुम्हें क्षमा करेगा।

प्रमोद—समाज के दोषों को दूर करके, तुम्हारे हाथों से
अबला-उद्धार होगा।

विनोद—भाई ! मुझे माफ़ करना। मैं आज तक दुरंगी
दुनिया में धोखा खा रहा था। मुझे क्षमा करो !

(प्रमोद के पैरों पर गिरना)

प्रमोद—विनोद ! उठो और अपने पिछले पापों का प्रायश्चित्त
करने के लिये धर्म वीर बना।

दुई का दर्द दूर होवे जाम ये । वहदुन का पीने से ।
जो बिछुड़े भाई हैं उनको लगा लो ढूँढ़ सीने से ॥
न कोई हिन्द में दुश्मन नज़र आयेगा ढूँढ़े से ।
बदों को भी बना लो नेक, नेकी के क़रीने से ॥
इस छूआ छूत के ख्यालों को दिल से दूर कर डालो ।
बड़े छोटे के पैमाने को चकना चूर कर डालो ॥

विनोद—ऐसा ही करूंगा। भाई मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि इस समाज के अन्धकार को दूर कर और ताज़िन्दगी सती उद्धार में रत रहूँगा। आबो विमले ! मैं तुम्हारे प्रेम की पत्रित्र गंगा में स्नान कर तुझे अपनी अर्धाङ्गिनी बनाता हूँ।

(आगे बढ़ता है, बीच में राय साहब आकर खड़े हो जाते हैं)

रा० सा०—बस, वहीं ठहरो। खबरदार !

होने न दूँगा व्याह मैं वेश्या के साथ में।

हरगिज़ न दिल को सौंपना वेश्या के हाथ में ॥

होगी बुगई इसमें भलाई न मिलेगी।

दौलत की दुनिया में एक पाई न मिलेगी ॥

विनोद—मैं ऐसे दौलत की दुनिया को ठोकर मारता हूँ।

नहीं रहने की एकसाँ घूमती दौलत है दर दर।

है चलती फिरती छाया और ढलती धूप से बदतर ॥

हुई है और न होने की है यह दुनिया में कोई की।

महा मतिमन्द हैं जो जानकर दें जान दौलत पर ॥

सफर सुरधाम में दौलत न यह कुछ काम आयेगी।

जुटा लेने दो पूँजी धर्म की जो साथ जायेगी ॥

रा० सा०—विनोद ! पछतायेगा।

लगा इज्जत में धब्बा आँसुओं से धो नहीं सकता।

बरे तू एक वेश्या को यह हरगिज़ हो नहीं सकता ॥

कंचनी—(आकर) क्यों नहीं हो सकता। जब तुम एक औरत को वेश्या बना कर उसके धन से धनवान हो सकते हो, तो तुम्हारा बेटा भी एक वेश्या से विवाह कर श्रीमान हो सकता है।



किन्ना है ज़ल्म तो ज़ल्ममें जिगर अशकों से धोयेगा ।

जो इसकी हो चुकी यह भी उस नारी का होयेगा ॥

रा० सा०—तुम कौन ?

कंचनी—देखो और पहचानो ।

रा० सा०—कौन ? कंचनी !

कंचनी—नहीं, कमलावती । जिस-बाल विधवा को बहका कर तुमने पाप के पथ में उतारा था, जिसे छिप कर डसने के बाद, तुमने अपने पाप पर परदा डाला था । मगर जब पाप का घड़ा भर गया और तू ने उसे नष्ट करने के लिये मुझे परदेश भगाया, रास्ते में मेरे तमाम ज़ेवरों को लेकर मुझे छोड़ कर चला आया तो उसका बदला मुझे क्या मिला ? वेश्या !

गर्भ से पीड़ित रही तू और पीड़ा दे गया ।

ले चुका था मान धन ज़ेवर भी सारा ले गया ॥

पास में पाई न छोड़ी ज़हर खाने के लिये ।

कर गया बेकस मुझे रंडी कहाने के लिये ॥

किस लिये इतनी घृणा वेश्या से दिखलाता है तू ।

पाप की पूँजी से दौलतमन्द आज कहलाता है तू ॥

रा० सा०—कमलावती ! कमलावती !! क्या तू अभी तक जीती है ?

कंचनी—हाँ जीती हूँ । तुमसे तेरे पापों का बदला लेने के लिये जीती हूँ । देख, यह उस रिपोर्ट की रसीद है, जो मेरे ज़ेवरों का डब्बा लेकर तेरे भाग जाने पर मैंने पुलिस की डायरी में दर्ज कराई थी । बोल ! अब तू समाज के सामने

कानून के पंजा में जाना चाहता है या विनोद को विमला से बिवाह करने की आज्ञा देता है ।

रा० सा०—आज्ञा...आज्ञा देता हूँ । आश्रो बेटा विनोद ! इधर आश्रो । मैं तुम दोनों का हाथ मिला दूँ ।

विमला—नहीं, नहीं, अब मैं माया के बन्धनों में बँध कर भटकना नहीं चाहती । मेरी यदि प्रार्थना स्वीकार है तो उस अबला का, जिससे बिवाह करने के लिये समाज के साथ मण्डप तक जाकर लौट आये थे, जिस समाज में ठोकर मारा कि वह मेरी बहन क्यों हुई, उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसे डूबने से बचा लो ।

कोगे पार क्या उसको कि जो पहुँची किनारे है ।

सहाग दो उसे भवधार में जो वे सहारे है ॥

रा० सा०—स्वीकार है । विमला देवि ! तेरी हर एक बात स्वीकार है ।

विनोद—तो पुत्र भी आपकी आज्ञा पर जान देने के लिये तैयार है ।

परमा०—हैं, यह कौन आ रही है ?

प्रमोद—कहाँ ?

परमा०—वह देखिये ?

(सरला का साधु वेष में गाने हुये प्रवेश)

सरला— गाना ।

जय जय जय घनश्याम !



विमला—कौन ? सरला ! अच्छे मौके पर आई ।

सरला—भिक्षाम् ! (झोली फैलाती है)

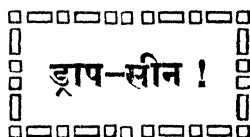
विमला—ले मैं तेरे मन की वस्तु प्रदान करती हूँ ।

योग मारग छोड़, जाओ प्रेम-पथ के रास्ते ।

ले ये तेरे वास्ते हैं, तू है इनके वास्ते ॥

(दोनों का हाथ मिलाना, सबका आशीर्वाद देना)

सब—ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!



नाटक

नाटक क्या है ? कैसा होना चाहिये ? उसकी भाषा भाव कथानक में क्या गुण हों ? 'दास' के लिखे हुये नाटकों से ग्रहण करें। साहित्य और रंगमंच दोनों को उज्ज्वल करने वाले नाटक, जनता के दिल को हिला देने वाले नाटक, मन की कल्पना, भावों का समावेश, घटनाओं का आयोजन-अलंकार घात प्रतिघात, भाषा में प्रवाह और ओज आपके लिखे हुये नाटकों में पाये जाते हैं। बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान् तथा सम्पादकों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

(निम्नलिखित नाटक और प्रहसन छपे हैं और छपने वाले हैं)

नाटक	प्रहसन
मेरी आशा	१) नाक में दम 1)
दूज का चाँद	१) जोरू का गुलाम 1)
वीर भारत	छपने वाले हैं धोखे की टट्टी 1)
जवानी की भूल	„ शक्कीमल 1)
पहिली भूल	„ करेन्सी नोट
गरीब की दुनिया	„ थियेट्रिकल हारमोनियम-
दौलत की दुनिया	„ मास्टर 1)
मेवाड़-पतन	„ संगीत थियेटर 1)
अबला के आँसू	„ रागनी थियेटर 1)
पहिला प्यार	„
फौसी का फन्दा	„

पता-उपन्यास-बहार-आफ्रिस, काशी बनारस।

